ओ३म्

सर्पविष चिकित्सा

(आयुर्वेदिक)

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

ओ३म्

सर्पविष चिकित्सा

लेखक

स्वामी ओमानन्द सरस्वती

प्रकाशक—

धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय,

कन्या गुरुकुल, नरेला, दिल्ली

ओ३म्

विषय सूची

सर्पदंशचिकित्सा	९
चिकित्सा, तीन बंध	१०
अंगछेदन, औषधि उपचार	११
निर्विष रोगी की पहचान, बंधों का प्रभाव	१२
सर्पदंश से बचने के उपाय	१३
रीठा वा अरीठा	१४
एक साधु का प्रयोग	१५
काली पाड़	१७
आयुर्वेदिक चिकित्सा, विषनाशक शिरीषारिष्ट	१८
सन्धान, नस्य	१९
शिरीष पाक, शिरीष का पंचांग	२०
सिरस के बीजों का चूर्ण, जमालगोटा	२१
यूनानी मत, अन्य औषध	२२-२३
सम्हालू, त्रिविध योग, जहर मुहरा	२४-३०
आयुर्वेद के प्रसिद्ध योग	३७
ऋषभागद, चन्द्रोदय अगद, अजित अगद, महा अगद	३८
तार्क्ष्य अगद, दशांग धूप, भीमरुद्र रस	३८
घृत चिकित्सा अमृतघृत, नागदन्ती घृत, तण्डुलादि घृत	३९
मृत्युपाशाघृत, तैल चिकित्सा, रस कर्पूरादि योग	४०
चरकशास्त्र और सर्पचिकित्सा, सर्पों के भेद, सर्पों के लक्षण	४१
सर्पविष के लक्षण	४१
दर्वीकर, मंडली, राजिमान्	४२
सांपों में स्त्री पुरुष के दंश भेद	४३
गर्भिणी प्रसूता के दंश लक्षण, सर्प की सन्तान गोहेरा	४४

मन्दविष वाले सर्प, सर्प में विष का स्थान, ४५
सर्पविष चिकित्सा पर मेरे अनुभव ४५
बाह्यचिकित्सा ४७
उशीरासव ५२
कुष्माण्डावलेह, प्रवालपञ्चामृत ५३
अमृतघृत का योग ५४
डाक्टर और सर्पदंश चिकित्सा ५५
ब्र० हरिशरण और सर्प ६८
दर्वीकर, मण्डली ७२-७६
कौड़िया, धामन, राजिमान्, निर्विष ७९-८१
सर्प सर्पिणी के भेद ८३
दंशभेद के लक्षण, विषैले सर्पदंश का प्रभाव ८४
सर्पदंश भेद ८५
सर्पित के लक्षण ८६
रदित और निर्विष का लक्षण, सर्पाङ्गाभिहत के लक्षण ८६-८७
अत्यन्त हानिकारक दंश, सर्पविष की मात्रा ८८
सर्पविष के सात वेग ९०
दर्वीकर सर्प विष के सात वेग ९२
सर्पदंश की साध्य असाध्य अवस्था ९३
मण्डली सर्प विष के सात वेग ९५
राजिमान् विष के सात वेग ९६
सर्पविष चिकित्सा, बंध का साधन ९७-९९
रक्त चूषण विधि १०१
सर्पदंश चिकित्सा, मलने का चूर्ण १०२
सर्पदंश चिकित्सा १०८
अमृता, नाकुली बूटी १०९
सांप और मनुष्य ११८
सांप को क्यों मारते हैं, सांप का भय ११९-१२०
एक बहुत आवश्यक सावधानी १२३

ओ३म्

भूमिका

वैसे तो सभी प्रकार के विषों की चिकित्सा अत्यन्त कठिन है। किन्तु सर्पविष की चिकित्सा तो सभी विषों से और अधिक कठिन है। क्योंकि विष ऐसा प्रतिकूल और घातक पदार्थ है जो किसी भी प्राणी के शरीर में प्रविष्ट किया जाता है तो उसके शरीर की सभी नियमित क्रियाओं में व्यवधान डाल देता है। विष के प्रभाव से शरीर की क्रियायें क्यों बिगड़ने लगती हैं? इसका मुख्य कारण यही है कि विष शरीर की रक्त आदि सभी धातुओं को दूषित कर डालता है। उनके दूषित होने से हृदय और मस्तिष्क दोनों विकृत हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपना काम करना छोड़ देती हैं। विषों में भी भेद है। कुछ विष तो ऐसे होते हैं जो शरीर की संचार क्रिया को धीरे-धीरे बिगाड़ते और प्रभावित करते हैं और कुछ विष ऐसे घातक होते है, जो तत्काल ही अपना प्रभाव दिखाते हैं। वे प्राणियों के शरीर को तुरन्त ही चेष्टाहीन और प्राणहीन कर डालते हैं।

ऐसे भयंकर विषों का उपचार वा चिकित्सा तुरन्त और यथोचित होनी चाहिये। किन्तु होता इसके विपरीत है। जब कभी इस प्रकार का दुःखदायी समय आता है तो उन्हें न चिकित्सा और न उपचार सूझते और न ही ढूंढ़ने पर औषध ही मिल पाती है। ऐसी आपत्ति के समय सभी इष्ट मित्र 'किंकर्त्तव्यविमूढ़' हो जाते हैं। उनके हाथ पैर फूल जाते हैं। बड़े २ चतुर लोग भी घबरा जाते हैं। समय पर अच्छे चिकित्सक नहीं मिलते या उनके आने में देर हो जाती है। रोगी की दशा बिगड़ कर वह मौत के मुंह में चला जाता है।

आयुर्वेद शास्त्रों में स्थावर और जंगम विष के इन दो भेदों का अधिक वर्णन मिलता है। तीसरे प्रकार का विष कृत्रिम विष भी होता है। आजकल अनेक ऐसे

विष भी हैं जिन्हें आधुनिक स्थावर विष कहा जा सकता है। जिनके उपयोग करने से भयंकर हानि होती है जंगम विषों में सांप, बर्रे (भिरड़) ततैया, बिच्छू, पागल कुत्ता, पागल गीदड़, पागल लोमड़ी, मधुमक्खी, नेवला, चूहे आदि के काटने का भी भयंकर और घातक प्रभाव पड़ता है। इन सबकी तत्काल ही चिकित्सा होनी चाहिये। वैसे विष क्या होता है? इसको अच्छे-अच्छे चिकित्सक भी नहीं जानते जिस धातु से विष शब्द बना है, महर्षि पाणिनि जी ने उसका अर्थ (विष विप्रयोगे) किया है। किसी पदार्थ के उल्टे या मिथ्या प्रयोग का नाम विष है। भगवान् ने कोई वस्तु हम प्राणियों के मरने के लिये नहीं बनायी। उसने सभी पदार्थ हमें सुख देने के लिये रचे वा बनाये हैं। उसके सभी पदार्थों का सदुपयोग या ठीक प्रयोग अमृत तुल्य सुखदायी होता है। किन्तु उसके अच्छे से अच्छे पदार्थ जो अमृत तुल्य हैं, जैसे घृत और मधु, घी और शहद का मिथ्या भी प्रयोग करें तो वह भी हमारे लिये विष बनकर घातक सिद्ध होता है। जिन पदार्थों को लोग विष के नाम से ही पुकारते हैं जैसे संखिया, कुचला, वत्सनाभ, (मीठा विष) और सर्प विष माने जाते हैं। किन्तु वैद्य और चिकित्सक इन उपरिलिखित विषों के उपयोग से भयंकर रोगों, विषूचिका (हैजा) प्लेग, नपुंसकता, आदि असाध्य रोगों की चिकित्सा कर के इन विषों को अमृत के रूप में बदल देते हैं। इसलिये विष का यथोचित अर्थ (विष विप्रयोगे) सर्वथा उचित ही है।

हम पहले लिख चुके हैं कि कोई भी विष स्थावर वा जंगम हो जब भी किसी प्राणी के शरीर में जाता है तो वह अपनी प्रतिकूल प्रक्रिया के द्वारा उस प्राणी के शरीर की सारी व्यवस्था को बिगाड़ देता है। रक्त आदि धातुओं के दूषित होने से हृदय और मस्तिष्क अपना काम छोड़ देते हैं। इनके विकृत होने से मानसिक व्यवस्था बिगड़ जाती है, जो बुद्धि को प्रभावित करती हैं। इससे ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपना ठीक-ठीक काम नहीं कर सकतीं। यदि समय पर यथोचित चिकित्सा न हो तो प्राणी अपनी जान और प्राणों से हाथ धो बैठता है।

इस पुस्तक में स्थावर, जंगम और कृत्रिमादि सभी विषों की चिकित्सा जान बूझकर नहीं लिखी गई है। क्योंकि पुस्तक का आकार बहुत बड़ा हो जाता। यदि संक्षेप से सभी विषों की चिकित्सा लिखते तो पाठकों को यथोचित लाभ नहीं होता। इसलिये इस पुस्तक में जंगम विषों में भी केवल एक सर्प विष की ही चिकित्सा को विस्तार से लिखा है। वैसे अनेक औषध जैसे अमृतघृत शिरीषारिष्ट

और नाकुली आदि ऐसी औषध हैं जो स्थावर जंगम सभी प्रकार के बिषों को को दूर करने में अचूक और अमोघ औषध हैं। इन्हें रामंबाण भी कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। इनका प्रयोग बहुत वर्षों से हम और हमारे साथी वैद्य हजारों रोगियों पर कर चुके हैं। ये दिव्य औषधियां हैं। जो जादू के समान आश्चर्यजनक लाभ करती हैं। पाठक उनको आजमायेंगे तो समय पड़ने पर इनके द्वारा बड़ी भारी सेवा और उपकार का कार्य कर सकेंगे।

इस पुस्तक में जहां बहुत से शास्त्रीय योग दिये हैं, वहां अपने और अपने साथियों के अनुभूत योगों का भी उल्लेख किया हैं। जिससे पाठक भली-भांति लाभ उठा सकें और अन्य दुःखिया प्राणियों की भी सेवा कर सकें। यहां सर्प विष की नियमित रूप से चिकित्सा के विषय में विस्तार से लिखा है। जहां बड़े-बड़े शास्त्रीय और अपने अनुभूत योग दिये हैं। वहां सर्प विष चिकित्सा की बहुत सी सामान्य औषध भी लिखीं हैं जो कहीं भी सरलता से प्राप्त हो सकती हैं। क्योंकि सांप किसी भी स्थान पर किसी भी समय काट लेता है। इसलिये उसी समय जो भी औषध मिल जाये उसी से तुरन्त उपचार कर देना चाहिये। जब तक उपयुक्त औषध और योग्य चिकित्सक नं मिले तो सामान्य औषध और उपायों से भी कई बार वहुत भारी लाभ पहुंच जाता है और रोगी के प्राण बच जाते हैं। इस पुस्तक को पढ़कर वैद्य वा डाक्टर सर्प दंश के अच्छे चिकित्सक बन सकते हैं। बुद्धिमान् विचारशील और सामान्य व्यक्ति भी इस पुस्तक के अनुसार बुद्धिपूर्वक अपना तथा दूसरों का वड़ा भारी उपकार वा सेवा कर सकता है।

पूज्या माता श्रीमती सुशीला आनन्द की प्रेरणा पर उनके सुपुत्र डा० सुधीर कुमार आनन्द जो आजकल अमेरिका में है हमारी आर्थिक सहायता करके चिकित्सा सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित करने के लिये हमें उत्साहित किया है। हम इन दोनों तथा इनके सारे परिवार के ऋणी और कृतज्ञ हैं। मेरी सुयोग्या पुत्री ब्रह्मचारिणी कुमारी कमलाआर्या (काकडोली) व्याकरणाचार्य और प्रियपुत्री ब्रह्मचारिणी कुमारी कृष्णा आर्या (मातनहेल) ने प्रेस कापी बनानें के लिये पूरा परिश्रम किया है। इन दोनों पुत्रियों के लिये मेरा आशीर्वाद है और आशा है कि भविष्यत् में भी ये दोनों इसी प्रकार सहयोग देती रहेंगी। भगवान् इनको सद्बुद्धि और दीर्घायु प्रदान करे।

यह पुस्तक सन् १९५३ ई० में लिखनी और प्रकाशित करनी आरम्भ की थी।

इसके कुछ पृष्ठ छपे भी किन्तु अनेक कारणों से बीच में ही रह गई। छपी हुई पुस्तक के पृष्ठ भी कहीं रद्दी की टोकरी में पड़े हैं। ब्रह्मचारी विरजानन्द जी दैवकरणि कई वर्षों से मेरे पीछे पड़ रहे थे कि यह 'सर्प वंश' की पुस्तक पूरी लिखकर प्रकाशित करनी चाहिये। मैं उनके शुभ आग्रह को टाल नहीं सका और जैसे-तैसे इसे लिखकर पूरा कर ही दिया। इसके प्रूफ देखने, शुद्ध छपवाने, इसके लिये भाग दौड़ करने का सभी श्रेय ब्रह्मचारी विरजानन्द जी दैवकरणि व्याकरणाचार्य को ही है। श्री श्यामलाल जी आर्य नरेला निवासी ने पुस्तक के लिये काग़ज़ की व्यवस्था कर दी। श्री सत्यपाल भाटिया ने इस पुस्तक को छपवाकर तैयार कर दिया। मैं इन सबका आभारी हूं। बहुत वर्षों के बाद पुस्तक अब पाठकों के हाथ में है। अतिविलम्ब के लिये क्षमा करें। अब इसे पढ़ें और लाभ उठायें। अनेक अनुभवी चिकित्सकों के अनुभव और पुस्तकों से जो हमने सहायता प्राप्त की है, मैं उन सबका आभारी हूँ और उनके लिये धन्यवाद और कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

निवेदक

ओमानन्द सरस्वती

सर्पविष चिकित्सा

प्राय: विषैले सांपों के काटने से रोगी अत्यधिक मूर्च्छित हो जाता है और वह देखने वालों को मृत, मुर्दा ही लगता है। सामान्य रूप से उसे पहिचाना नहीं जा सकता कि वह चेतनावस्था में है अथवा मुर्दावस्था में। क्योंकि तीक्ष्ण विष के कारण नाड़ी और हृदय की गति लगभग बन्द ही हो जाती है। इसलिये ऐसी अवस्था में अज्ञानी लोग सर्पदंशित रोगी को मुर्दा समझ कर जला देते हैं। जल में प्रवाहित कर देते हैं। अथवा गाड़ देते हैं। यहाँ कुछ ऐसे लक्षण या पहिचान दी जाती है, जिनसे यह ठीक निर्णय हो जाय कि सर्प दंशित रोगी मर चुका है अथवा बेसुध (बेहोश) पड़ा है।

१—यदि दिन का समय हो तो प्रकाश वाले स्थान पर रोगी को लिटाकर उसकी आँख खोलकर देखें अगर आँख की पुतली में आप का प्रतिविम्ब (छाया) दिखाई दे तो समझ लो रोगी जीवित है, मरा नहीं।

२—यदि रात्रि का समय है तो रोगी को अन्धेरी कोठरी में लिटाकर उसकी आँख खोलकर उसके सम्मुख जलते हुये दीपक के प्रकाश की किरणें रोगी की आंख की पुतली में दृष्टिगोचर हो तो समझ लो अभी यह जीवित है, मुर्दा नहीं।

३—अत्यन्त हलके बर्त्तन में पानी डालकर रोगी की छाती पर रख दें और उसे ध्यान पूर्वक देखते रहें, यदि श्वास बाकी होगा तो जल हिलता हुआ दिखाई देगा।

४—रोगी के सिर में से चोटी के स्थान के पास से उस्तरे से सर्वथा बाल काट द और वहां दो चार चीरे लगाकर देखें यदि वहां से रक्त निकले तो रोगी

को जीवित समझें और उसकी चिकित्सा करें।

उपर्युक्त लक्षणों से ही रोगी के जीवित या मृत की पहचान होती है।

चिकित्सा—तीन बन्ध

१—यदि सांप का काटा हुआ रोगी तुरन्त ही चिकित्सक के पास पहुंच जाये अथवा कोई भी व्यक्ति उस समय उसके पास हो तो जिस स्थान पर सर्प ने काटा हो उस स्थान से दो तीन अंगुल के अन्तरे पर बहुत ही सुदृढ़ बन्ध लगा दें। यह रस्सी बहुत ही मजबूत होनी चाहिये, चाहे यह रेशम की हो या सूत की हो। टूटने वाली रस्सी न हो। बन्ध भी खूब कसकर बन्ध दें, ढीला न बाँधें। ढीला बान्धने से कोई लाभ नहीं होगा, विष रक्त में प्रवेश कर जायेगा। बन्ध के सख्त बांधने से विष ऊपर नहीं जायेगा। इसी प्रकार दो तीन इंच के अन्तर पर तीन बन्ध बान्धने चाहियें। इन बन्धों के वांधने में देरी नहीं करनी चाहिए। तभी विष शरीर में प्रवेश करने से रोका जा सकेगा। यह सावधानी रखनी चाहिए कि जिस स्थान पर सर्प ने काटा हो सभी वंध उससे ऊपर ही वांधने चाहिये। यदि सर्प से काटे बहुत देर हो गई हो तो बंध भूलकर भी नहीं बांधने चाहियें। उन बन्धों से जो देर से वांधे जायेंगे, उनके बांधने से हानि ही होगी, लाभ नहीं। बन्ध तभी बांधे जाते हैं जब सर्प ने हाथ वा पैर पर ही काटा हो। यदि सर्प ने ऐसे स्थान पर काटा है, जिस स्थान पर बंध नहीं बांधा जा सकता हो तो उस स्थान पर तुरन्त ही दहकते जलते हुये कोयलों से दाग दे देवें अथवा लोहे का टुकड़ा आग में खूब गर्म करके सर्प से काटे हुये स्थान को अच्छी प्रकार से जला डालें। आग लगाने वा जलाने का कार्य बहुत शीघ्र होना चाहिए नहीं तो इसमें जितनी देर लगी होगी उतना सर्प के काटे रोगी का प्राण जाने का (मृत्यु का भय) अधिक बढ़ता जाएगा। आयुर्वेद शास्त्र में बांधने का विधान है:—

सर्वेरेवावितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः।
दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टाश्चतुरंगुले ॥३॥
न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ॥४॥
दहेद् दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ॥५॥

(सुश्रुत कल्पस्थान, अध्याय ५)

अर्थात् यदि किसी हाथ पैर या अंगुली आदि पर सर्प काटं ले तो उसी समय डसे हुए स्थान पर चार अंगुल ऊपर रस्सी से कसकर बंध बांध देना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार बांधने से शरीर में विष नहीं फैलेगा। जहां रस्सी न बांधी जाए वहां दंशित स्थान को तेज शस्त्र (चाकू आदि) से काट कर जला देना चाहिये।

खून चूसकर विष निकालना, बन्ध लगाना, दाग देना, रोगी के प्राण बचाने के लिए ही है। इसी प्रकार सर्प के काटे हुए स्थान को चीरे लगाकर तेज चाकू से वा उस्तरे से चीरे लगाकर तुरन्त मुख से रक्त वा विष को चूसना भी लाभप्रद है। इस कार्य को स्वयं सर्पदंशित रोगी भी कर सकता है। खून को चूस-चूसकर तुरन्त ही बाहर थूक देना चाहिये। यह ध्यान रहे कि विष चूसने वाले व्यक्ति के मुख में कोई घाव (जख़म) न हो और उसे मसूढ़ों का रोग न हो, नहीं तो वह विष मुख वा मसूढ़ों द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो कर हानि कर देगा। सर्प विष चूसने वाले लोग इस कार्य में बड़े ही सिद्धहस्त होते हैं। उनसे विष चुसवाना अधिक अच्छा रहता है है। यदि वे सर्प के काटते ही कहीं पास में तुरन्त मिल जायें तो अच्छा रहता है।

अंग छेदन

यदि सर्प ने किसी के हाथ वा पैर की अंगुली पर काटा हो तो तुरन्त उस अंगुली का कुछ भाग काट देना चाहिए। यदि अन्य किस भाग पर सर्प ने काटा हो तो घाव के चारों ओर का भाग काट कर फेंक देना चाहिए। रोगी के प्राण बचाने के लिए यह तुरन्त कर डालना चाहिए। यह निर्दयता नहीं, बहुत बड़ी दया का कार्य है। रोगी के प्राण बचने चाहियें। हमारा वीर ब्रह्मचारी हरिशरण निर्भीकता से सांप को पकड़ता रहता था। एक दिन उसने काले सर्प को पकड़ लिया। सर्प ने अवसर पाकर उसकी अंगुली को काट लिया। ब्रह्मचारी हरिशरण ने तुरन्त ही तेज चाकू से अपनी अंगुली का दंशित भाग काट डाला, वे बच गये किन्तु विष का थोड़ा प्रभाव रह गया जिससे वह दंशित घाव बड़ी देर में अच्छा हुआ।

औषध उपचार

१—सर्प के काटे हुए भाग को गर्म जल से धोकर साफ करलें और उसमें

कुयें में डालने वाली लाल औषध (पोटाशियम परमेगनेट) का गाढ़ा-गाढ़ा घोल भर देना चाहिये।

२—अथवा पोटाशियम परमेगनेट अधिक मात्रा में उस स्थान पर रखकर जल की कुछ बूंदें उस पर डाल कर रूई का फोया रखकर पट्टी बांध देवें तथा फिर कोई भी सर्प दंश की खाने की औषध देवें, उसके शरीर को गर्म रखने का यत्न करें।

३—रस्सी से बांधे हुये बन्ध तब तक न खोलें जब तक रोगी सर्वथा निर्विष न हो जाये।

रोगी के निर्विष होने की पहचान

किसी रोगी को सर्प ने काटा है वा नहीं इसकी पहचान यही है कि रोगी को नीम के पत्ते खिलायें यदि कड़वें न लगें तो सांप ने काटा है और इसी प्रकार जब चिकित्सा से सर्प विष समाप्त हो जाये और रोगी को नीम के पत्ते अथवा कोई भी कड़वी औषध खिलाने से कड़वी लगने लगे तो समझ लें कि रोगी चिकित्सा से निर्विष हो गया है। तभी बन्ध यदि बान्ध रखें हों तो खोल डालें।

बन्धों का प्रभाव

आपके बांधे हुए स्थान के आगे विष नहीं चढ़ा इसकी यह पहिचान है।

१—जहां पर विष नहीं चढ़ा हो वहां पर चाकू वा उस्तरे से काटने चीरा लगाने से शुद्ध रक्त वा खून लाल रंग का निकलता है। बन्ध लगाते तथा खोलते समय यह पहिचान कर लेनी चाहिए। विष फैल जाने से रक्त (खून) काले रंग का निकलता है।

२—जहां आप ने पहला बन्ध लगाया हो फिर उसके ऊपर के बाल नोच कर (खींचकर) देखो, यदि वहां विष चढ़ चुका है तो वह स्थान अचेतन (सुन्न) होगा। वहां के बाल सो गये होंगे। यदि वहां विष नहीं चढ़ा होगा तो वहां के बाल सोये नहीं होंगे।

इस सावधानी से रोगी की चिकित्सा करने में सहायता मिलेगी तथा रोगी के प्राण बचाने सरल हो जायेंगे। यदि समय पर बन्ध न लगे अथवा बन्ध लग भी जाय तो भी सर्प के डसे हुये स्थान पर तेज चाकू से पछने (चीरे) लगाकर उस

पर नमक डालकर मसते रहें जिससे रक्त निकलता रहे। क्योंकि खून के साथ विष भी निकलता रहेगा और रोगी का जीवन भी बच जाएगा।

बन्ध लगाने पर यदि विष रुक न सके और तेजी से सारे शरीर में चढ़ रहा हो और जहां सर्प ने काटा हो और उसके ऊपर बन्ध लगा हो, उससे ऊपर जहां तक विष चढ़ चुका हो वहां एक तेज छुरे से चीर डालें यदि वहां विष का प्रभाव न हो और रक्त लाल निकल रहा हो तो उस पर अग्नि का दाग लगा दें, जिससे विष उसी स्थान पर रुक जायेगा। इसके साथ सर्प दंश को उतारने वाली खाने की औषध का सेवन करायें। फिर नीम की पत्ती खिलाकर परीक्षण करें। यदि खाने से कड़वी लगे तो समझो सर्प विष कम हो गया वा नष्ट हो गया है। जब नीम के पत्ते कड़वे वा औषध सर्प के काटे हुये रोगी के खिलाने से कटु (कड़वी) न लगे तो सर्प का विष उतरा नहीं, उसका प्रभाव शेष है, ऐसा जानें। यही सर्प विष हटने वा उतरने की परीक्षा है।

रस्सी के बांधे हुये बन्ध तभी खोलने चाहियें, जब पूर्ण रूप से यह निश्चय हो जाये कि सर्प विष सर्वथा उतर गया है। विना विष उतरे बन्ध काटने से कई बार रोगी की मृत्यु होती देखी गई है।

बन्ध लगाने, जलाने, दाग देने, काटने, चूसने तथा सर्वप्रकार की औषध चिकित्सा से भी सर्पदंश के रोगी के बचने की कोई आशा न हो तो प्रतिविष चिकित्सा करनी चाहिए। अर्थात् सर्पों के जंगम विष दूर करने के लिए स्थावर विष संखिया, कुचला तथा मीठा तौलिया आदि का प्रयोग किसी अनुभवी वैद्य डाक्टर के परामर्श से करना चाहिए और दूध घी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करना चाहिये। इससे रोगी के प्राण बच सकते हैं। ऐसी चिकित्सा कभी भूलकर भी स्वयं न करें, इसमें बहुत सावधानी तथा अनुभव चाहिए।

सर्प दंश से बचने के उपाय

१—नीम के पांच पत्ते प्रातः काल चबाकर प्रतिदिन खाने से सांप के विष का प्रभाव नहीं होता।

२—घर में बारह सींगे का सींग लटका देने से वहां से सांप भाग जाता है।

३—राई और नौसादर दोनों समभाग पीसकर घर के प्रत्येक भाग में छिड़कने से सांप घर में हो तो बाहर भाग जाता है।

४—घर में गंधक की धूनी देने से भी घर से सांप भाग जाता है।

५—सिरस का एक बीज प्रतिदिन खाने से सांप पास नहीं आता और काटता नहीं।

६—चन्द्रोदय रस निरन्तर एक वर्ष प्रतिदिन नियम पूर्वक खाने से मनुष्य पर जंगम सर्पादि के विष और स्थावर संखिया आदि के विषों का प्रभाव नही होता।

७—आम का बूर (फूल) जिसको आप पहिले ही दिन देखो, उसे हाथों में लेकर एक घन्टे तक अपने हाथों पर खूब मसलें, इससे सांप एक वर्ष तक आपके निकट नहीं आयेगा :

८—मसूर की दाल और नीम के पत्ते मिलाकर खाने से सांप नहीं काटता। उसके विष के भय से एक वर्ष तक छुटकारा मिल जाता है।

९—मोर पालने से सर्प वहां से चले जाते हैं वा छिप जाते हैं। जहां मोर मोरनी रहते हों वहां सांपों का प्रभाव नहीं रहता। सांप मोर का शाश्वत वैर वा दुश्मनी है। जहां मोर के चन्दे रखे रहते हैं वहां सांप नहीं आते।

१०—नकुल न्योले के रहने वा पालने से सांप का भय नहीं रहता। नकुल और सर्प का शाश्वत द्वेष है।

रीठा वा अरीठा

अरीठा वा रीठा जिसे संस्कृत में अरिष्ठ वा फेनिल कहते हैं यह भी आयुर्वेद में विष नाशक माना गया है। यह वमन कारक है और वमन के साथ सारा विप बाहर निकल जाता है। अतः सरलता से वमन कराने वाला होने से विप को वमन द्वारा बाहर निकाल देता है और रोगी के प्राण बच जाते हैं।

१—रीठे को आयुर्वेदिक निघण्टुओं में विष नाशक नहीं लिखा किन्तु जब सांप के काटे हुए रोगी को बहुत देर हो गई हो और कोई चिकित्सा न की गई हो अर्थात् खाने की कोई विष नाशक औषध नहीं दी गई हो और विष का प्रभाव सारे शरीर पर हो गया हो तो अधिकतर सर्पदंश के चिकित्सक वमन कराते हैं।

२—रीठे का ६ मासे छिलका ठंडाई के समान घोटकर तीन छटांक पानी मिलाकर रोगी को पिला देवें। कुछ मिनटों में वमन हो जाएगा। फिर इसी प्रकार रीठे के छिलके की ठंडाई बनाकर बार-बार पिलायें, वमन होता रहेगा और विष

निकलता रहेगा । जब रोगी इसे कड़वी कहकर पीने से निषेध करे तब पिलाना बन्द कर दें और जहर का प्रभाव नष्ट हुआ जानलें ।

३—रीठे का छिलका २ तोले लेकर खूब बारीक पीस लें और इसमें से ती मासे चूर्ण जल में घोलकर सर्पदंशित रोगी को दे देवें । एक घन्टे में चार ब.. करके १ तोला रीठे का छिलका जल के साथ खिला देवें वा पिला देवें । इससे वमन होकर सर्प विष निकल जायेगा ।

यदि रोगी अचेत हो तो जल में घोल कर मुख (दांत) खोलकर पिला देवें, मुख में डालदेवें वमन होकरविष निकल जाएगा और रोगी को होश भी आ जाएगा वमन होने के पीछे घी—दूध मिलाकर पिलाना चाहिए इससे जो खुश्की (रुक्षता) रीठे पिलाने और वमन कराने से आती है वह दूर हो जाएगी । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रीठे को तीन चार वार पिलाने पर भी रोगी को वमन नहीं होता किन्तु निराश होकर रीठा पिलाना बन्द नहीं करना चाहिये । ठहर-ठहर कर पिलाते रहो, वमन अवश्यमेव होगा और वमन होने पर विष निकलकर रोगी बच जायेगा । यह बहुत से वैद्यों की अनेकबार की अनुभूत औषध है । हमारी भी अनुभूत है किन्तु हम इसका प्रयोग आजकल नहीं करते क्योंकि हमारे पास सर्पदंश तथा सभी विषों की बहुत ही बढ़िया, शीघ्र प्रभावकारी, सहस्रों रोगियों पर अनुभूत, अद्वितीय रामबाण औषध है जिसकी चर्चा आगे करेंगे ।

रीठे की औषध का प्रयोग अमृतसर के प्रसिद्ध स्वर्गीय वैद्य पं० कृष्णदयाल जी बहुत करते थे उनको क्या किसी अन्य वैद्य को भी हमारी औषध का ज्ञान पहले नहीं था और हमें भी बहुत पीछे उसका ज्ञान हुआ । अब तो बहुत वर्षों से हम उसका सफल प्रयोग कर रहे हैं ।

एक साधु का प्रयोग

१—जायफल १ तोला, केशर कशमीरी १तोला, अफीम असली १ तोला । अफीम को छोड़कर तीनों पदार्थों को पृथक्-पृथक् खूब बारीक पीस लें, फिर इनमें अफीम मिलाकर और पूर्ण एक दिन तक खरल करें फिर इसमें ६ माशे मधु (शहद) मिलाकर सुरक्षित रखें । मात्रा २ रत्ती से ४ रत्ती तक जल के साथ खिलायें । यदि रोगी अचेत (बेहोश) पड़ा हो तो जल में घोलकर उसके मुख में डाल दें । नाक को बन्द कर देवें । औषध के अन्दर जाते ही रोगी को होश आ जायेगा । यदि

विष का प्रभाव-बहुत अधिक हो तो दो तीन बार यह औषध देवें और जिस स्थान पर सर्प ने काटा हो उस स्थान पर तेज चाकू वा उस्तरे से पछने (चीरे) लगाकर ऊपर वाली औषध पानी में घोलकर गाढ़ा लेप कर देवें। लेप के स्थान पर छाला पड़ जायेगा और वह स्वय ही फूट जायेगा। यह औषध कई बार प्रयोग करावें नीम की पत्तियाँ रोगी को चबवायें। यदि कड़वी लगें तो समझ लें कि सर्प विष शान्त हो गया, इस औषध का वैद्यों ने प्रयोग किया है तथा प्रयोग से लाभ हुआ है अफीम उपविष है अतः यह प्रतिविष चिकित्सा है इसका प्रयोग मुफ्त औषध देकर करें यही साधु का आदेश है।

२—जामुन वृक्ष की छाल ५ तोले, काली मिर्च एक तोला। दोनों को कूट छान कर १ पाव जल के साथ घोट कर पिलावें। सर्प विष को दूर करने वाला यह एक प्रभावशाली योग है, ऐसा अनुभवी वैद्यों का कथन है। इसके एक बार पिलाने से यदि लाभ न हो तो बार-बार पिलायें। जामुन का छिलका यदि ताजा वा गीला मिल जाये तो बहुत अच्छा नहीं तो सूखा छिलका मिलने पर उसी का प्रयोग करें।

३—शुद्ध कुचला मात्रा ४ चावल से १ रत्ती तक, काली मिर्च का चूर्ण ३ माशे से १ तोला के साथ सेवन करायें इसमें घृत से द्विगुण मात्रा में मधु भी मिलाया जा सकता है। यह प्रतिविष चिकित्सा है। किसी वैद्य से परामर्श करके प्रयोग करायें। कुचला गर्म और खुश्क होता है। अतः घृत का सेवन अवश्य करायें।

४—बिल्लोर असली १ तोला, संगे जराहत (घीया भाठा) १ तोला, सत्व (जोहर) नौशादर, लोटा सज्जी एक तोला, शीशा नमक ४ तोले, सब खूब खरल करके अत्यन्त बारीक पीस लें किन्तु पहिले बिल्लोर को खरल करके मलाई के समान बनालें, फिर अन्य वस्तुओं को अत्यन्त बारीक पीस लें और सब को मिलावें। इस औषध की मात्रा २ रत्ती से १ माशे तक हो। इसे जल के साथ देवें और जिस स्थान पर सांप ने काटा हो चीरे लगाकर इस औषध को जल में मिलाकर लगायें। सन्त गुलाबसिंह जिनका यह योग है उनका कथन है कि सर्प कितना ही विषैला हो इस औषध से उसका विष निश्चय से उतर जाएगा।

५—कुचले के घनसत्व का इन्जीकशन करने से भी सर्पदंश के रोगी को विशेष लाभ होता है।

६—कण्टकारी छोटी (पसर कटाई या कटेरी) विष नाशक बूटी है। इसका पचांग लेकर कूट छानकर बारीक कर लें मात्रा छः माशे जल, दूध वा घृत के साथ देवें। एक घण्टे में कई बार देवें। कटेली के फल पकने पर पीत वर्ण के हो जाते हैं। इसके बीजों का चूर्ण अधिक हितकारी होता है। इसकी मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक है। इसका भी सेवन जल, मधु वा घृत के साथ करायें। घण्टे में दो बार दे दें। हम अपने सर्पदंशामृत में इसको भी डाल देते हैं। इनको पीसकर पिलाने से विष दूर हो जाता है।

७—दरियाई नारियल मात्रा १ माशा बारीक पीसकर जल के साथ पिलायें। यह स्थावर और जंगम सभी विषों को दूर करता है। यह भी सर्पविष की अच्छी औषध है अनेक वार देवें।

काली पाड़

८—यह काली पाड़ वा काली पहाड़ी एक प्रकार वा रेचक कन्द होता है जो प्रायः करीर (करील) के वृक्षों के मध्य में पाया जाता है। इस कन्द को जल के साथ खूब घोटकर पांच काली मिर्च भी साथ रगड़ लें फिर इसे पिलायें। इससे वमन तथा विरेचन (दस्त) लगेंगे और सर्प विष निकल जायेगा। रोगी के प्राण बच जायेंगे। हरयाणा प्रदेश में परम्परागत सर्प विष चिकित्सक इनका खूब प्रयोग करते हैं।

९—निर्विषी (निर्वसी) की बेल वा गांठों को अथवा मूल को जल के साथ पीसकर पिलाने से भी वमन विरेचन होकर सर्पविष से छुटकारा हो जाता है और रोगी बच जाता है।

१०—रामचणा (त्रिपत्ती) के कन्द जो आलू के समान भूमि में निकलते हैं, इसको १ तोला लेकर जल के साथ रगड़ घोटकर पिलाने से सर्प विष दूर हो जाता है।

११—शिरीष वृक्ष जिसे ग्रामीण लोग सिरस कहते हैं यह सब प्रकार के विषों का अपहरण करने लगा है।

भावप्रकाश निघण्टु में इसे विषापहः, धन्वन्तरि निघण्टु में विषहा और राजनिघण्टु में विषवात हरः परः लिखा है। इससे यही सिद्ध होता है कि यह सब प्रकार के स्थावर और जंगम विषों की सर्वश्रेष्ठ औषध है। यूनानी ग्रन्थों में भी इसी

प्रकार इसे सब प्रकार के जहरों को दूर करने वाला लिखा है। जैसे—

१—हकीम जलालुद्दीन लिखते हैं कि सिरस की अन्तर छाल, सिरस की जड़ की छाल, सिरस के हरे पत्ते और सिरस के हरे फूल ये सब वस्तुयें बीस-बीस तोला लेवें और पुरुष के मूत्र में पीसकर नुगदी कर लें। फिर इसमें १०० तोला मूत्र डालकर आग पर चढ़ा देवें। जब वह खूब पकने लगे तो उसमें २५ तोला गो मूत्र भी डाल देवें। मनुष्य के मूत्र के स्थान पर गोमूत्र भी डाला जा सकता है उसमें ही यह नुगदी डाल देवें। मन्दी आंच से पकावें। जब केवल घृत शेष रह जाए तो निथार कर छान लेवें। सर्पदंश के रोगी को यह घृत पिलाने से सर्पविष नष्ट हो जाता है। साधारण विष में एक रत्ती घृत देवें और विषैले सर्प के विष पर तीन चार रत्ती पिलाना चाहिये। हमारा मत है इतनी थोड़ी मात्रा से सर्पदंश पर लाभ नहीं हो सकता। मात्रा एक तोले से पांच तोले होनी चाहिए। हम भी बहुत वर्षों से सर्पदंश की चिकित्सा करते हैं। मात्रा रतियों में नहीं तोलों में होनी चाहिए।

२—सफेद मिर्चों को सिरस के फूलों के रस में सात भावनायें देवें और छाया में सुखाकर उनको बारीक पीसकर चूर्ण बना लेवें। सर्पदंश के रोगी को यही सुंघाएं तथा आंख में इसी का अंजन डालें, सर्पदंश में लाभ होता है।

३—सफेद मिर्च एक छटांक को सिरस के पत्तों में भिगोवें और छाया में सुखा दें और इन्हें मलकर फिर सिरस के पत्तों के रस की इसी प्रकार सात भावनायें देकर सुखाकर रख लें। इसी को खिलायें, सुंघायें और आंखो में डालें।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

हम पहले लिख चुके हैं कि शिरीष स्थावर जंगम सब प्रकार के विषों को दूर करने वाला है। विषैले फोड़ों, मुगाली फोड़े, नासूर, लोकलसोर, कंठमाला की ग्रन्थियों को दूर करने में अत्यन्त लाभदायक औषध है।

विषनाशक शिरीषारिष्ट

शिरीषारिष्ट का योग—

पचेत्तुलार्धं द्विद्रोणे शिरीषस्य जले सुधीः।
पादशेषे कषायेऽस्मिन् क्षिपेत गुडतुलाद्वयम्॥

क्वाथ द्रव्य

सिरस की छाल २॥ सेर जौकुट करके दो द्रोण (८० सेर) जल में पकाकर

चौथा भाग १० सेर शेष रहने पर उतार कर छान लें। इसके ठंडा होने पर प्रक्षेप औषध डालें।

प्रक्षेप—

कृष्णाप्रियंगु कुष्ठैला नीलिनीनागकेशरम् ।
रजन्यौ पासमानेन दद्यादत्र च नागरम् ।।

ठडा होने पर काढ़े में १० सेर गुड़ घोल दें। फिर पीपल, प्रियंगु, कूठ, बड़ी इलायची, नील का पंचांग, नागकेशर, हल्दी, दारुहल्दी, दोनों सोंठ ये सब चार-चार तोले, जौकुट करके डालें।

सन्धान

मासादूर्ध्वं जातरसं यथामत्रे प्रयोजयेत् ।
शिरीषारिष्ट इत्येष विषव्यापद्विनाशनः ।।

सबको घड़े में भरकर कपड़ मिट्टी से मुख बन्द कर देवें और एक मास के पश्चात् खोलकर प्रयोग करें। मात्रा दो तोले समान जल मिलाकर भोजन के एक घण्टा पश्चात् शीशे के गिलास में प्रातः सायं दोनों समय लेवें। सर्पदंश आदि विष का अधिक प्रभाव हो तो यथोचित मात्रा में अधिक बार भी देवें। इस शिरीषारिष्ट को हमने सर्पदंश के बहुत रोगियों पर प्रयोग किया है। यह सब प्रकार के विषों को दूर करने में अद्वितीय औषध है :—

शिरीषारिष्ट इत्येष विषव्यापद्विनाशनः

अर्थात् शिरिषारिष्ट सर्वप्रकार के विष विकारों का नाशक है।

बहुत कम औषधरसायनशालायें इस अरिष्ट को बनाती हैं। इसका निर्माण हमने गुरुकुल झज्जर की रसायनशाला में करके सैंकड़ों रोगियों को ठीक किया है। सर्पदंश बिच्छू विषादि जंगम विषों पर तथा संखिया, वत्सनाभ, कुचला आदि स्थावर विषों पर यह अमोघास्त्र अर्थात् अचूक औषध है। हमारी बार-बार की अनुभूत है। इसके विषय में अधिक मेरे सिरस नामक पुस्तक में पढ़ें।

नस्य

सिरस की छाल, नीम की छाल, करञ्ज की छाल और कड़वी तोरई सब को

समभाग लेकर कूट छान लें और गोमूत्र में पीसकर इसको पिलायें भी और सुंघायें भी। इससे स्थावर और जंगम दोनों प्रकार के विष शान्त होते हैं।

सिरस के बीज छः माशे, अपामार्ग के बीज छः माशे और सेंधा नमक छः माशे इन सबको मिलाकर या पानी में पीसकर इसका कल्क या नुगदी बना लो। इस नुगदी को सुंघाने या इसका पानी नाक में डालने से सर्पदंश आदि के विष से मूर्च्छित रोगी होश में आ जाता है।

सिरस की छाल जो कि वृक्ष पर ही काली हो जाती है विष को दूर करने में बहुत गुणकारी है। इस सूखी छाल को छः माशे लेकर आठ माशे साठी चावलों के धोवन के साथ प्रतिदिन पीने से एक वर्ष तक विषैले सांप आदि जन्तुओं का प्रभाव नहीं होता। काटने वाला प्राणी ही मर जाता है।

सिरस के जड़ की छाल, सिरस वृक्ष की छाल, सिरस के बीज और सिरस के फल सबको पांच-पांच माशे बारीक पीसकर एक-एक चम्मच गोमूत्र के साथ दिन में कई बार देवें, सर्प विष दूर हो जायेगा। अनुभूत है। इनका ही सर्पदंश के स्थान पर लेप कर देवें।

शिरीष पाक

सिरस की अन्तर छाल १ पाव को कूटकर १ सेर जल में उबालें। १ सेर जल शेष रहने पर उसको छान लें और उस उसमें सिरस के बीज १ तोला, सिरस के पत्ते १ तोला इन दोनों को कपड़ छान करके मिलायें तथा इसमें १ पाव मधु मिलाकर थोड़ा आग पर पकाकर इसे गाढ़ा कर लेवें। यह शिरीष पाक तैय्यार है। इसकी मात्रा ६ माशे से १ तोला है। इसे खायें। इसके निरन्तर एक, दो मास के सेवन से कण्ठमाला ठीक हो जाती है। यह मूत्र कृच्छ्र तथा जुकाम, प्रतिश्याय, पीनस को भी ठीक करता है। जैसे कण्ठमाला आदि फोड़ों के लिये यह पाक लाभदायक है, वैसे सर्पदंशादि विषों को भी यह दूर करने वाला है।

केवल सिरस के पत्तों को पीसकर सांप के काटे पर लेप करने से सर्पविष उतर जाता है। अनुभूत है। यह सर्व प्रकार के घावों और फोड़ों को ठीक करता है।

शिरीष का पंचांग

शिरीष की जड़, फल, बीज, वल्कल, फूल और पत्ते ये पंचांग ही सर्प, बिच्छू

आदि सब के विषों का अपहरण करने वाले हैं। इन सबको मिलाने से और लेप करने से जादू के समान यह सर्पादि विषों का अपहरण करता है। सर्पविष के कारण सूजन और पीड़ा को यह थोड़ी सी देर में दूर कर देता है। हमारा बार बार का अनुभूत है।

शिरीष के बीजों का चूर्ण

शिरीष के बीजों का चूर्ण १ पाव १/२ सेर मधु में मिलाकर एक चीनी वा मिट्टी के पात्र में कपरोटी से बन्द करके उस पात्र को ४० दिन गेहूं के ढेर में गेहूं के कोठे में दबा देवें। फिर प्रतिदिन १ माशा प्रातः सायं लेने से सर्वप्रकार के विष विकार, रक्त विकार, कण्ठमाला, उपदंशादि भयंकर रोग दूर हो जाते हैं। कुछ वैद्यों का मत है कि उपर्युक्त पात्र को एक सप्ताह धूप में रखने से भी यह औषध तैय्यार हो जाती है। सर्प दंश के रोगी को इसकी मात्रा अधिक तथा कई बार भी दी जा सकती है।

जयपाल व जमालगोटा

दन्ती के बीजों को जो अरण्डी के बीज के समान होते हैं। इनके बीजों की गिरी के बीच में जीभी सी होती है, वही वमन लाती है। इसे शुद्ध करते समय बीजों का तेल व चिकनाई दूर कर दी जाती है तथा जीभी को निकाल देते हैं तब ये खाने के योग्य हो जाते हैं। जमालघोटा वा जयपाल कफ नाशक तीक्ष्ण, गरम और रेचक है, अतः दस्तों के साथ विष भी निकल जाता है। मठ्ठा (तक्र), दही, दूध घी के पीने से इसका दर्प वा खुश्की दूर हो जाती है।

१—दो व तीन जमालगोटे की गिरी १ तोला, जंगली तोरई (कड़वी तोरई) इन दोनों को जल के साथ पीसकर जल में घोल कर पिला देने से सांप का विष उतर जाता है।

२—इच्छाभेदी रस की दो तीन गोलियां ताजे जल के साथ देने से दस्त होकर विष निकल जाता है। वैद्य सर्वस्व में लिखा है—

३—किमत्र बहुनोक्तेन जयपालेनैव तत्क्षणम्।
घृतं शीताम्बुना श्रेष्ठं भोजनं सर्पदंशके॥

बहुत कथन करने से क्या लाभ? केवल जमालगोटे को घी में पीसकर

शीतल जल के साथ पीने से सांप काटा हुआ रोगी तत्काल विष रहित होकर स्वस्थ हो जाता है। बिच्छू के काटे हुए स्थान पर लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

४—जमालघोटे की गिरियों को नीम की पत्तियों के रस से २१ भावनायें दें। इन भावना दी हुई जमपाल की गिरी को मनुष्य की लार में घिसकर सर्प के काटे रोगी की आंखों में डालें। इससे रोगी चेतना (होश) में आ जाता है, एवं सर्प दंश का विष दूर होकर रोगी बच जाता है।

यूनानी मत

५—इलाजुलगुर्बा में लिखा है। 'काली मिर्च सात माशे, जमालगोटा की गिरी सात माशे, इन दोनों को तीन कागजी नीम्बुओं के रस में घोटकर काली मिर्च के समान गोलियां बनायें। इनमें से एक या दो गोली पत्थर पर जल से घिस कर सांप के काटे रोगी की आंखों में डालें और शीतल जल के साथ दो तीन गोलियां खिला भी देवें। कुछ दस्त आकर सर्प विष का प्रभाव नष्ट हो जाएगा। जमालगोटा आंख में डालने से आंखें दुखनी आ जाती है। उसकी औषध कर लें। गोघृत या मलाई का गर्म फाया बांधने से आंखें ठीक हो जाती हैं।

६—अकेला जमालगोटा को घी में पीसकर, शीतल जल के साथ पीने से सांप के काटे को आराम हो जाता है।

७—नींबू के रस में जमालगोटे को घिसकर आंखों में डालने से सर्पदंशित रोगी ठीक हो जाता है।

८—आयुर्वेदशास्त्र में बला नामक चार बूटियां हैं। बला, अतिबला, नागबला, और महाबला। इनमें नागबला को जल के साथ घोटकर ठंडाई के समान पिलाने से सर्प विष दूर हो जाता है। मात्रा—बूटी का दो तोले पंचांग लेकर खूब बरीक घोट पीसकर जल में मिलाकर कई बार पिलायें। इसका नागबला नाम भी इसी कारण से है क्योंकि नाग विषैले सर्प का नाम है यह उसके विष को दूर करती है। नाग हाथी को भी कहते हैं यह हाथी के समान बल देने वाली है।

६—जंगली चौलाई की जड़ चावलों के पानी में पीसकर पिलाने से सर्प का विष तुरन्त ही उतर जाता है। पागल कुत्ते और गीदड़ का विष भी तुरन्त जाता

है। एक साधु जंगली चौलाई की जड़ से चिकित्सा करता था और बहुत प्रसिद्ध था।

१०—यूनानी हकीमों का मत है कि यदि सांप का काटा रोगी बेहोश हो तो उसके पेट पर नाभि के ऊपर उस्तरे से पेट का चमड़ा छील दो खून न निकले, उस स्थान पर जमालगोटे की गिरी जल में पीस कर उस पर लगा दो इसके लगाने से वमन होकर रोगी होश में आ जायेगा और फिर उसको अन्य औषध दो।

११—तिब्बे अकबरी में लिखा है—सांप के काटे हुए को जमालगोटे की दो वा तीन गिरी निकाल कर खिलायें और साथ ही छिले हुए जमालगोटे की एक गिरी मूंग के समान जल में पीसकर रोगी की आंख में लगायें। इससे बेहोश, रोगी भी होश में आ जाता है। सर्प दंश स्थान पर पछने (चीरे) लगाकर सींगी से अथवा मुख से सर्प विष को चुसवायें। इससे रोगी बच जायेगा। जमालगोटा वमन कारक है, इसमे वमन होकर विष निकल जाता है।

अन्य औषध

१२—बड़ के अंकुर, मजीठ, जीवक, ऋषभक, मिश्री और कुम्भेर इनको पानी में पीसकर पिलाने से मण्डली का सर्प विष नष्ट हो जाता है।

१३—रेणुका कुठ, तगर, त्रिकुटा, मुलेहठी, अतीस घर के धूवें की कालिमा (कालिख) और मधु इन सब को समभाग लेकर मिला पीसकर जल के साथ पीने से सर्प विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है।

१४—बालछड़, चन्दन, सेंधा लवण, पीपल, मुलेठी, काली मिर्च, कमल इन सबको पीसकर आंखों में अंजन समान डालने ले सर्प विष से मूर्च्छित रोगी भी शीघ्र होश में आ जाता है।

१५—करंज के बीज, त्रिकुटा, बिल्ववृक्ष की जड़, हल्दी, तुलसी के पत्ते और बकरी का मूत्र सबको इकट्ठा पीसकर नेत्रों में डालने से मूर्च्छित रोगी होश में आ जाता है।

१६—इन्द्र जौ और पाठ के बीजों को पीस कर नस्य देने से बेहोश रोगी को होश आ जाता है। फिर अन्य चिकित्सा करें।

१७—मुनक्का, असगन्ध, गेरु, सफेद कोयल, तुलसी के पत्ते, कैथ के पत्त.

और अनार के पत्ते इन सब को इकट्ठा पीसकर और मधु में मिलाकर सेवन कराने से मण्डली सर्प का विष नष्ट हो जाता है।

१८—अपराजिता, विष्णुकान्ता और कोयल एक ही बूटी के नाम हैं। यह दो प्रकार की होती है। इसके नीले तथा सफेद फूल होते हैं। बागों में लता के रूप में मिलती है। फूलों के कारण ही यह नील कोयल (नील अपराजिता) और सफ़ेद कोयल इनके दो भेद हैं। आयुर्वेद शास्त्र में लिखा है।

आमं पित्तरुजं चैव शोथं जन्तव्रणं कफम् ।
ग्रहपीडां शीर्षरोगं विषं सर्पस्य नाशयेत् ॥

सफेद (अपराजिता) आम पित्तरोग, सृजनकृमि घाव, कफ, ग्रहपीड़ा, मस्तक रोग और सर्प विष का नाश करती है। इस प्रकार श्वेतपुष्पा अपराजिता या सफेद कोयला सर्प विष की उत्तम औषध है।

सम्हालू

सम्हालू व निर्गुंडी का पचांग भी सर्वप्रकार के विषों को दूर करता है। सम्हालू के पत्तों का लेप सर्पदष्ट स्थान पर करने से विष दूर होता है। सम्हालू की जड़ का वल्कल छाया में शुष्क करके कूट छान लें तथा इसी के पत्तों के रस की अनेक भावना देवें तथा जल के साथ छः माशे खिलायें। बार-बार खिलाने तथा लेप करने से सर्प विष का प्रभाव दूर हो जाता है।

२०—कसौंदी के बीज महीन पीसकर आंखों में अंजन लगाने से सर्पविष दूर होता है।

२१—समुद्रफल बारीक पीसकर दोनों आंखों में डालें। सर्पविष उतर जायगा।

२२—सम्भालू के वीज, हींग के पेड़ की जड़ दोनों को मिलाकर खिलाने से सर्पविष दूर होता है।

२३—कलिहारी की गांठ को जल में पीसकर नस्य लेने से सर्प का विष दूर होता है।

२४—आमुन की दो तीन पत्ती जल में पीसकर पिलाने से सर्पविष दूर होता है।

२५—सांप, पागल कुत्ता वा कोई अन्य विषैला जन्तु काट खाये और कोई

अन्य औषध न मिले तो काटे हुये स्थान पर स्वयं मूत्र (पेशाब) कर देनें से लाभ होता है। सभी चिकित्सक इसे लाभदायक मानते हैं।

२६—कमलफल को कूट पीसकर जल में मिला छानकर पिलाने से सर्पविष दूर होता है।

२७—नींबू के १ तोला बीज पीस कर खाने से सब विष दूर होते हैं।

२८—आक के फूलों का सेवन करने से न्यून विष वाले सर्पों का विष नष्ट हो जाता है।

२९—सर्प के काटे रोगी को तुरन्त तीन-चार माशे नौशादर बारीक पीसकर थोड़े से शीतल जल में घोलकर पिला दो इससे लाभ होगा।

३०—ऊपरवाली औषध के साथ कुछ व्यक्ति रोगी को पकड़ कर एमोनिया सुंघा दें तो अधिक लाभ होगा। कुछ लोग इसे अनुभूत औषध मानते हैं। एमोनिया अंग्रेजी दवाखानों से मिल जाती है। इसे सुंघाने से बेहोश रोगी होश में आ जाता है। हिस्टेरिया में भी इसे सुंघाने से लाभ होता है।

३१—यदि समय पर एमोनिया न मिले तो नौशादर छः माशे, खाने का चूना (जो पान में खाते हैं) छः माशे दोनों को मिला लें। शीशी में भरकर अथवा पोटली में बांधकर सुंघायें, तुरन्त ही लाभ होगा। एमोनिया भी इनके मिलाने से बनता है।

३२—नीला थोथा बारीक पीसकर जल में घोलकर पिलाने से सर्पविष वमन होकर दूर हो जाता है।

३३—थोड़ा-सा सूखा तम्बाकू कूटकर जल में भिगो देवें तथा कुछ समय पश्चात् रगड़कर छानकर सर्प काटे रोगी को पिलायें वमन होकर विष दूर होगा और रोगी बच जायेगा।

३४—गोघृत सर्वोत्तम औषध है। घी को गर्म करके काली मिर्च के साथ पिलाने से सर्पविष दूर हो जाता है। यदि गोघृत न मिले तो भैंस का घी भी ले सकते हैं। कोई औषध न मिले तो केवल घी ही पिला देवें। ग्रामों में तो घृत पिलाना सभी प्रकार के विषों को दूर करने वाला माना जाता है। बार-बार का अनुभूत है। घृत सर्वत्र उपलब्ध भी हो जाता है।

३५—सिरस के पत्तों के रस में सुहाञ्जने के बीजों को सात दिन तक भावना देने से सर्पविष की उत्तम औषध बन जाती है। सिरस के पत्तों को कूटकर रस

निकाल लें तथा सुहांजने के वीजों का चूर्ण इसमें भिगो देवें और छाया में सुखा लें, फिर दूसरे दिन इसी प्रकार सिरस के पत्तों के रस में पुनः भिगोकर सुखायें। इस प्रकार सात दिन तक भिगोकर सुखाते रहें। आठवें दिन सुखा पीसकर शीशी में रख लें। इसी औषध को नाक से सुंघाकर नस्य देवें। आंखों में इसी का अंजन डालें। पानी में घोलकर छः माशे तक पिलायें इस प्रकार औषध सेवन करने से सर्पविष नष्ट होकर रोगी चंगा हो जाता है। यह औषध पहिले से तैयार कर घर पर रखनी चाहिए। समय पर तो यह तैयार नहीं हो सकती।

३६—आक के पत्तों पर जो सफेदी-सी होती है वह नाखूनों से खुरच कर इकट्ठी कर लो फिर उसमें आक का दूध मिला कर घोट लें और चने के समान गोली वना लें और सर्पदंशित रोगी को बीस वा तीस मिनट के पश्चात् एक-एक गोली निरन्तर खिलाते जायें। जब तक गोली रोगी को कड़वी न लगे, खिलाते जायें। जब गोली कड़वी लगने लगे तो आप समझ लें कि विष नष्ट हो गया है। छः सात गोलियां खाने पर विष उतर जाता है। गोली कड़वी लगने पर देना बन्द कर दें। आक का पंचांग विषनाशक है। आक स्वयं भी उपविष है। यह प्रतिविष चिकित्सा है। यदि कुछ उष्णता आदि प्रतीत हो तो गोघृत खिला देवें।

३७—करंजवे के फल की गिरी, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, बेल की जड़, हल्दी, सुरसा के फूल इन सबको बकरी के मूत्र में पीसकर आंखों में डालने से सर्प का काटा रोगी होश में आ जाता है। फिर और औषध दे देवें।

३८—फिटकड़ी पीसकर और जल में घोलकर पिलाने से भी सर्प विष दूर होकर रोगी को लाभ होता है।

३९—सफेद फूलवाले पुनर्नवा की जड़ छः माशे से एक तोले तक जल में पीसकर और घोलकर पिलाने से तथा उसी जड़ को मुख में रखकर चूसने से तथा जड़ को जल में पीसकर सर्प के काटे स्थान पर लेप करने से रोगी के प्राण बच जाते हैं।

४०—यदि कोई उपयोगी औषध समय पर न मिले तो १ तोला फिटकड़ी पीसकर रोगी को जल के साथ खिलायें। इससे शरीर का सारा रक्त फट जायेगा और सर्प का विष नहीं चढ़ेगा रोगी बच जायेगा फिर ऊपर से गोघृत कुछ काल बीतने पर पिलायें।

४१—कुचला और महुवा दोनों जल में पीसकर सांप के काटे स्थान पर

इनका लेप करने से सर्प विष उतर जाता है ।

४२—कसौंधी की जड़ ४ माशे और काली मिर्च दो माशे जल के साथ खाने से सर्प विप समाप्त हो जाता है ।

४३—बकरी की मींगन सब विपों को दूर करने के लिए लाभदायक है। पानी में पीसकर काटे हुए स्थान पर इनका लेप करना चाहिए ।

४४—तुरन्त तोड़ी हुई ताजा ककड़ी को खिलाने से सर्प विष दूर होता है।

४५—सफेद कनेर के सूखे हुए फूल ६ माशे, कड़वा तम्बाकू ६ माशे और इलायची के बीच २ माशे इनको कूटकर कपड़ छान कर लो, यह नसवार है। इसे सूंघने से सर्पविप दूर होता है ।

४५—सांप के काटे व्यक्ति को बहुत मात्रा में लहसुन, प्याज और राई खिलाओ । यदि कुछ न मिले तो यह घरेलू औपध अच्छी है ।

४७—सांप राई से बहुत डरता है । यदि आप सांप के मार्ग में राई डाल देवें तो वह उस मार्ग को छोड़कर भाग जायेगा । यदि आप सांप के बिल व बाम्बी में राई और जल में नौशादर मिलाकर डाल दें तो सांप उसे छोड़कर भाग जायेगा ।

४८—आक की तीन कोंपलें गुड़ में लपेट कर रोगी को खिलाने से सर्प का विप उतर जाता है । ऊपर से घी पिलाने से अधिक लाभ होता है ।

४९—आक की चार कली, सात काली मिर्च और एक माशा इन्द्रायण, सब को पीस कर खिलाने से सर्प का विष उतर जाता है ।

५०—आक की जड़ बार-बार रगड़कर पिलाने से सर्प विप नष्ट हो जाता है ।

५१—थोड़ा सा कुचला और काली मिर्च पीसकर खाने से सर्प विप दूर होता है। कुचले की मात्रा १ चावल है। यह भी विष है। इसे खिलाकर घृत खिलाना अथवा पिलाना चाहिए ।

५२—जहां सर्प दंश हो, वहां पर काटकर (पछने लगाकर) शुद्ध कुचले को पानी में रगड़कर लेप कर दें ।

५३—सर्प का काटा होश में न हो तो कुचला जल में पीसकर गले में अंदर डालें तथा थोड़ा कुचला पीसकर गर्दन और शरीर पर मलें । यदि रोगी मरा नहीं होगा तो होश में आकर बच जायेगा। यह प्रतिविप चिकित्सा है। इसे सावधानी

से करना चाहिये। किसी वैद्य या डाक्टर से परामर्श कर लें तो उचित होगा।

५४—काली मिर्च सात माशे, जयपाल की गिरी ७ माशे, तीन कागजी नीम्बुओं के रस में खरल करके काली मिर्च के समान गोली बना लें। इन गोलियों को जल में पीसकर आँख में डालें तथा दो तीन गोलियां खिलायें। वमन तथा दस्त होकर रोगी बच जायेगा।

५५—तेलिया सुहागा २० माशे भून लें और तैल में मिलाकर पिलाने से सर्प विष नष्ट हो जता है।

५६—आक की जड़ अथवा आक की रूई दोनों को पीसकर पिलायें तथा साथ-साथ सांप के काटे हुए स्थान को थोड़ा चाकू से काटकर आक का दूध भी टपकाते रहें। जब तक दूध सूखता रहे टपकाते रहें। जब सूखना वन्द हो जाय तो सर्प विष का प्रभाव नष्ट हुआ समझें।

५७—सुहागा विष नाशक है। यदि वह संखिया के साथ पीस लिया जाये तो संखिया का विष कम हो जाता है। इसीलिए सर्प विष दूर करने के लिए सुहागा खिलाया जाता है।

५८—कड़वे नीम के पत्ते, काली मिर्च दोनों एक साथ खूब चबायें। विप दूर होगा।

५९—नीम के पत्ते तथा सैंधा लवण साथ-साथ चबाने से सर्पविष हट जाता है।

६०—नीम के पत्तों का रस पिलाते रहने से विष दूर होता है।

६१—नीम की छाल को घोटकर जल के साथ पिलाने से पूर्वोक्त लाभ होता है।

६२—प्रतिदिन नीम के पत्ते चबाते रहने से सांप के काटने पर विष नहीं चढ़ता। नीम के पत्तों और छाल आदि का लेप करने से भी लाभ होता है।

नीम वृक्ष का पञ्चांग ही विषनाशक है। अधिक मेरी लिखी "नीम" पुस्तक में देखें। किन्तु भयंकर विषैले सर्पों के विष को नीम का सेवन सर्वथा दूर करने में सफल नहीं होता।

६३—सैंधा लवण, काली मिर्च, नीम के फल समभाग लेकर तीनों को पीस कर मधु वा घृत के साथ खिलाने से सर्पादि के जगम विष तथा स्थावर संखियादि

क विष नष्ट होते हैं।

६४—वांझ ककोड़े की जड़ में बकरी के मूत्र की भावना दो। फिर इसे कांजी में पीसकर सांप के दंशित रोगी को इसकी नस्य देवें। इससे सर्प विष नष्ट होगा।

६५—वांझ ककोड़े को जल में मिलाकर पिलाने से तथा काटे हुए स्थान पर लेप करने से सर्प, बिच्छू, मूषक, बिल्ली आदि के विष नष्ट हो जाते हैं।

६६—सफेद कोयल, कायफल, सफेद पुनर्नवा, लेहसवा और चौलाई की जड़ सबको पीकर जल के साथ पिलाने से दर्वीकर और राजिल जाति के सर्पों का विष समाप्त हो जाता है। अच्छी औषध है।

६७—घर का धुवां, हल्दी, जंगली चौलाई की जड़ और दारु-हल्दी इन चारों को एक साथ पीसकर दही और घी में मिलाकर पीने से वासुकि सर्प के काटे हुए रोगी को लाभ होता है।

६८—चार तोले काली मिर्च और एक तोला चांगेरी का रस इन दोनों को इकट्ठा करके गोघृत में मिलाकर पीने और लेप करने से तेज विष भी नष्ट हो जाते हैं। चांगेरी खट्टी बूटी का ही नाम है। लोग इसकी चटनी तथा शाक भी बनाते हैं।

६९—मनुष्य का मूत्र पीने से भी विष नष्ट होता है, यह बंगसेन तथा अन्य वैद्य भी मानते हैं।

७०—परवल की जड़ की नसवार लेने से सर्प विष नष्ट होता है। बंगसेन तथा वृन्द दोनों ऐसा मानते हैं।

७१—पिण्डी तगर को आंखों में लगाने से सांप का काटा हुआ बच जाता है। पिण्डीतगर का दूसरा नाम नन्दीतगर भी है। तगर दोनों ही विष नाशक हैं किन्तु पिण्डीतगर सर्प विष नाशक है यह इसका विशेष गुण है।

७२—कपास के पत्तों का पांच तोले स्वरस सांप के काटे रोगी को पिलाने तथा काटे स्थान पर लगाने से सर्प विष नष्ट हो जाता है। इसी रस को पिचकारी (सिरंज) द्वारा शरीर के भीतर पहुंचाने से और अधिक लाभ होता है। कुछ वैद्यों का यह अनुभूत है।

७३—लांगिया एक दूध वाली बूटी होती है। इसका दूध काले सर्प का विष दूर करता है। इसके खिलाने से वमन विरेचन होकर सर्पविष नष्ट हो जाता है।

कतीरा गोंद इसके दर्द (प्रभाव) को नष्ट करता है।

७४—बड़ के अङ्कुर, मजीर, जीवक, ऋषभक, बला (खरैंटी), गम्भारी और मुलहटी इन सबको वारीक पीसकर पीने से सर्पविष नष्ट हो जाता है।

७५—नागन बेल की जड़ १ तोला' १ ½ पाव जल में पीसकर रोगी को पिलायें। इसके पिलाने से वमन (कै) होकर विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है। यदि एक बार पिलाने से विष पूरा नष्ट न हो तो ६ माशे औषध, १/२ पाव पानी में घोटकर पिलायें, वमन से विष निकल जायेगा। इस प्रकार जब तक विष नष्ट न हो वमन कराते रहें। जब विष नष्ट हो जायेगा तो नीम के पत्ते कड़वे लगेंगे। फन वाले विषैले सांपों का विष दूर करने के लिए १ तोला जड़, १/२ पाव जल में पिलाये। छः माशे की मात्रा थोड़ी है। जड़ को पत्थर के साथ घिसकर जल में भली प्रकार घोलकर पिलायें। अनुभवी वैद्य इसको सर्वप्रकार के विषों को दूर करने वाली अच्छी औषध मानते हैं। कुत्ते के काटे की भी यह औषध है।

७६—नागन बेल की जड़ बिल्कुल सर्प वाले आकार की होती है। यह स्वाद में बहुत ही कड़वी होती है। यह मालवा के पहाड़ों में मिलती है। वहां नागन नाम से ही यह प्रसिद्ध है। यह न मिले तो पुनर्नवा की जड़ का प्रयोग इसके स्थान पर कर सकते हैं। यह भी लाभदायक है, किन्तु नागन के समान नहीं।

७७—नागदमनी वा नागदोन नागन वेल से भिन्न है। नागदोन के पत्ते काम में आते हैं। ये भी सर्प विष तथा मकड़ी आदि के विष को नष्ट करते हैं। नागदस नाम की औषध किसी-किसी निघण्टु में लिखी है। इसकी जड भी सर्पाकृति की ही होती है तथा विष नाशक है।

जहर मुहरा

७८—स्थावर (संखियादि), जंगम (सर्प विषादि), दोनों प्रकार के विषों को नष्ट करने की शक्ति जहर मुहरे में है। इसकी २ रत्ती की मात्रा है। किन्तु एक समय में एक गेहूं से अधिक न चटायें। इसके चटाने से खूब वमन हो कर उदरस्थ सब विष निकल जाता है। जब विष नहीं रहेगा तो वमन होनी बन्द हो जायेगी।

जहर मुहरा दो प्रकार का होता है। पाशविक (हैवानी) जो मेंढक आदि में से निकाला जाता है। दूसरा खनिज जो खानों को खोदकर निकाला जाता है।

यह एक प्रकार का पत्थर है। इसका रंग पीलक लिए हुए सफेद होता है। असली की पहचान है कि नीम की पत्तियों के साथ जहर मुहरा एक साथ मिलाकर रगड़ो फिर चखो यदि नीम का कड़वापन जाता रहे तो जहर मुहरा असली है। इसे खरीदकर परीक्षा करके प्रयोग करें।

विष और हैजे के प्रभाव को यह बहुत शीघ्र नष्ट करता है। हैजा तो दो तीन दिन में ही समाप्त हो जाता है।

७६—तम्बाकू को दो तीन घन्टे जल में भिगोकर इसका रस निचोड़ कर हाथों पर खूब मलें, लेप करें, लपेटें और सांप को पकड़ें तो वह कुछ नहीं करेगा। इसी रस को सांप के मुख में डालें तो सर्प मर जाता है, यह प्रसिद्ध है। सांप को कभी पकड़ना नहीं चाहिए। प्रायः सांप के पकड़ने वाले सांप के काटने से ही मरते देखे गये हैं। सांप को पकड़ना छेड़ना मृत्यु को निमन्त्रण देना है। इसे पकड़ने की कभी भूल न करें।

८०—सांप के काटे रोगी को आम की गुठली की गिरी का चूर्ण गर्म जल के साथ खिलायें और पिलाते रहें जब तक वमन न हो। जब तक कै होती रहे इसे खिलाते रहें। जब तक वमन होना बन्द हो जाए पिलाना बन्द कर देवें, विष नष्ट हो जायेगा।

८१—बानरी घास जिसे कुत्ता घास भी कहते हैं। इसका रस रोगी को पिलाओ, सुंघाओ तथा काटे हुए पर भी लगाना चाहिए। इससे सर्पविष तुरन्त नष्ट हो जाता है।

बानरी घास का पौधा कांगनी के समान होता है। इसकी बाल कांगनी के समान ही होती है। यह वर्षा ऋतु में होती है। इसका रस वा घन सत्व बना कर रख लेना चाहिए।

८२—कुछ व्यक्तियों का कथन है कि यदि सर्प का काटा रोगी सर्प के काटते ही सर्प को अपने मुख से काट ले तो विष नहीं चढ़ता। कुछ कहते हैं कि मिट्टी के ढेले को काटने तथा दांतों में लोहे को दबाने से भी सर्प विष नहीं चढ़ता। सर्प को दांतों से पकड़ कर काटना अत्यन्त कठिन तथा वीरता का काम है यह मन को बदलने की बात है। सांप के काटने से रोगी भयभीत हो जाता है। कितने रोगी तो विष के कारण नहीं, सर्प के भय से ही मर जाते हैं। सर्प के काटने से उसका खून का कुछ अंश मुख में लगने से विष नष्ट होना सम्भव है किन्तु यह कार्य

असम्भव सा ही है। हां सांप के काटने पर मिट्टी के ढेले को काटना वा लोहा चबाने को कार्य तो सरल ही है। कुछ लोगों का यह कहना है कि कुछ औषध न मिले तो मिट्टी को ही खा लेना हितकर है। अपना पेशाब (मूत्र) पीना तथा लगाना भी लाभदायक है।

८३—लेसुवा, कायफल, बिजौरा नींबू, श्वेतस्पदा (श्वेतगिरिह्व) मिश्री और चौलाई इनको कूट छान कर मधु मिला के गाय के सींग में भर दें और सींग से भर दें तथा १५ दिन पश्चात् उपयोग करें। इसके सेवन से राजिल तथा दर्वीकर सांपों का विष नष्ट हो जाता है।

८४—मुनक्का, सुगन्धा (नाकुली), शल्लकी (नागवृत्ति) इन तीनों को पीस कर इनमें तीनों के समान मजीठ मिला देवें। फिर इसमें तुलसी के पत्ते दो भाग कैथ, वेल,अनार के पत्ते ये सब भी दो दो भाग मिलायें। फिर सम्भालू १/२ भाग, गेरु १/२ भाग सबको मिलाकर इन्हें सींग से बन्द करके १५ दिन रखें फिर प्रयोग करें। मधु घृत अथवा दूध के साथ ४ माशे दवा का प्रयोग करें। इसका अञ्जन लगाना तथा नस्य लेना भी लाभदायक है। अनेक बार करके अँजन १ माशे तक डाला जा सकता है। नस्य ५ माशे तक कई वार में तथा वमन के लिए ७ माशे तक तथा खाने के लिए ४ माशे तक प्रयोग करें।

८५—सधा लवण, पीपल, कालीमिर्च और अदरक इन को कूट कर छानकर रगड़कर घृत, मक्खन और मधु इन सबको मिलायें तथा सर्प के काटे रोगी को पिलायें वा खिलायें। यह सर्प काटे रोगी की अच्छी औषध है। घी और मक्खन ही सर्वप्रकार के विषों की उत्तम औषध हैं।

८६— खटमल निगलना, चूहे का पेट फाड़कर सांप काटे स्थान पर बांधना केंचुयें खिलाना आदि अनेक औषध लिखी हैं किन्तु ये सब राक्षसी औषध हैं। इनका सेवन नहीं करना चाहिए। जब दुनियां में एक से एक बढ़कर सर्पविष की अच्छी औषध चिकित्सार्थ उपलब्ध हैं तो क्यों जीव हिंसा करें और अभक्ष्य वस्तुओं का सेवन कर क्यों अपना धर्म बिगाडें। मोरनी के अण्डे की भी औषध इसी प्रकार सेवन करनी लिखी है।

८७—मोर के चन्दे को खिलाना, उसका धूवां पिलाना, इसके चन्दे का दंशित स्थान पर बांधना सर्प विष का नाशक है।

८८—घृत पिलाना विशेष रूप से गोघृत का भक्षण विष नाशक है। यह सभी

साधारण व्यक्ति भी जानते हैं।

८९—जहरमुहरे को गुलाब के जल में पत्थर पर घिसकर (एक मात्रा १ रत्ती) सर्प के काटे रोगी को चटायें इसके चटाने से वमन (कै) होगा। जब कै हो जावे फिर चटावो जब तक वमन होती रहे चटाते रहें। जब वमन होनी बन्द हो जायें तो विष समाप्त हुआ जान चटाना बन्द करें। इसको काटे स्थान पर लगाना भी चाहिए।

९०—कान का मैल सर्प काटे स्थान पर लगाने से भी लाभ होता है। इसी प्रकार गाय का मूत्र पिलाना भी विष नाशक है।

९१—श्वेत पुनर्नवा की जड़ चावलों के साथ घोटकर पीने से १ वर्ष सर्प नहीं काटता। सर्प विष की औषध बहुत हैं जो समय पर मिल जाये तथा प्राणों को बचा सके वही औषध है। वैसे तो सर्प विष के चिकित्सक से चिकित्सा करानी हितकर है। किन्तु जब वैद्य वा डाक्टर न मिले तो ऊपर लिखी औषधों में जो उपलब्ध हो उसका सेवन कर कराकर रोगी के प्राण बचाने चाहियें। सर्प विष क्या, सभी विषों की चिकित्सा बहुत कठिन है। विष मारक वस्तुओं का ही तो नाम है। इसलिए मृत्यु से बचाने के लिए जो समय पर औषध उपाय बन सके करना ही चाहिए।

९२—तगर चार तोले, कूठ ४ तोले इनको कूटकर कपड़छान करलें घृत १० तोले, शहद ८ तोले मिलाकर सांप के काटे रोगी को पिलायें। सर्प विष दूर होगा।

९३—पीपल का पंचांग मिलाकर रोगी का विष नष्ट करें। पीपल के पत्तों को रगड़कर पिलाने से भी विष नष्ट होता है। पीपल की दो कोमल पतली टहनी अथवा डालसहित पत्ते जिनको दोनों कानों के छिद्रों के अन्दर रख सकें इतनी पतली लें और सर्प काटे हुए रोगी के कानों के छिद्रों में उन टहनियों वा डंठल सहित पत्तों को रखें। एक व्यक्ति इन्हें दृढता से पकड़े, ये अन्दर जाने लगें तो बहुत अन्दर न जाने दे इन्हें खींचे रहे किन्तु मजबूती से पकड़े, ये जब तक सर्प विष का प्रभाव रहेगा तब तक पीपल की टहनी कानों में अन्दर खिंचेगी। जब विष नष्ट हो जायेगा तब पीपल की टहनी ढीली पड़ जायेगी। समझ लें कि सर्प विष नष्ट हो गया। इसी काल में पीपल के पत्तों का रस पिलाते रहें। कुछ लोगों का कथन है कि यह सफल प्रयोग है। हमने एक बार बहुत वर्ष हुए इसका प्रयोग किया तब तो

रोगी को कोई लाभ नहीं हुआ।

९४—बिनौले की गिरी कूट छानकर पीसकर ओटाकर पिलाने से सर्प विष नष्ट होता है।

९५—कसेरू को पीसकर देने से विष दूर होता है। यह सर्वप्रकार के विषों का हरण करता है। उष्णवीर्यविषों की अच्छी औषध है। कुछ लोग मोरनी के अण्डे आदि से भी औषध बनाते हैं। इस कार्य में हिंसा भी होती है। अतः ऐसी आसुरी औषध नहीं करनी चाहिये।

९६—असारा रेवन्द १ तोला, रीठे का छिलका १ तोला दोनों का चूर्ण काजल समान बारीक घोंट लें। ४ रत्ती से १माशे तक घी में मिलाकर एक ही दिन में २-२ घंटे के अन्तर से ३ मात्रा दें। भयंकर से भयंकर सर्प का एक ही दिन में इलाज हो जाता है। कै और दस्त द्वारा विष नष्ट हो जायेगा।

९७—मोर चन्दे का सुनहरी भाग ४-५ नग लेकर तम्बाकू की भांति चिलम में पीवें।

९८—भिलावे को मुंह से काटकर चिमटे से पकड़ कर आग पर गर्म करो, जब झाग और तैल निकलने लगे तब सर्प काटी जगह को थोड़ा सा खुरच कर इसे चिपका दो। सर्प विष को चूस कर यह स्वयं गिर जाएगा। यदि एक से पूरा लाभ न हो तो दूसरा, तीसरा भिलावा चिपका दें।

९९—साठी (विषखपरा) की जड़ छः माशे, १२ नग सफेद मिर्च पानी में घोंटकर पिला दें। यदि एक मात्रा से लाभ न हो तो आधा घन्टा बाद फिर पिलायें। ४-५ बार देने से अवश्य लाभ होगा।

१००—सफेद कनेर की जड़ की छाल दो माशे को ७ काली मिर्च से १२ तोले जल में घोंट कर शीशी में रख दें। १-१ घन्टे बाद शीशी को खूब हिला कर १-१ तोला पिलायें। यदि बेहोशी में मुख बन्द हो तो चम्मच से दें। २ बार देने पर २ घन्टे में आराम होगा, परन्तु ४ घन्टे बाद शरीर हिलने लगेगा। दंशित स्थल पर सफेद कनेर की जड़ को पीस कर लेप करना भी उत्तम है।

१०१—हुक्के की नली का कीट चणे बराबर लेकर घी के साथ खिलाने से अवश्य लाभ होता है। १ से ३ मात्रा आवश्यकतानुसार दी जा सकती हैं। काले सर्प की अचूक दवा है। यदि यह कीट काले सर्प को खिला दें तो फन कट कर गिर जाएगा, ऐसा कहा जाता है। दंश पर भी इस कीट को खुरच कर लगायें।

१०२—तूतिया या सफेद घुंघची बारीक पीसकर नलकी से नाक में फूंकें। थोड़ी देर में नाक से पीला पानी निकलेगा। बेहोशी दूर होने पर छाछ में नमक डाल कर पिलादें। काटे पर खुरच कर नमक लगादें।

१०३—गाय भैंस आदि को पूरा और मनुष्य को आधा पलाश पापड़ा बीज पानी में पीस कर पिलायें। यह एक मात्रा है। २-३ मात्रा भी आवश्यकतानुसार दें।

१०४—अपामार्ग चिरचिटे की डाली (पत्ते, पेड़, जड़ कोई भी अंग) पानी से पीसकर काटे पर लगायें। जड़ का उपयोग अधिक मिलता है।

१०५—२-४ रत्ती तक बच्छनाग १०-१२ काली मिर्च के साथ घोट कर पिलायें। दस्त होकर विष नष्ट हो जाता है।

१०६—नागफन घास १ माशे को काली मिर्च के साथ घोट कर पिलादें। नागफन एक प्रकार का घास होता है, जिसकी लम्बी पत्ती के बीच लाल रेखा सी होती है। यह बिजनौर प्रान्त के नजीबाबाद के पास अधिक होता है। इसे थोहर न समझें।

१०७—कसौंदी के पत्ते गीले २ तोले (सूखे छः माशे या १ तोला) १२ काली मिर्च थोड़े घी में पीस कर पिलादें। कसौंदी के पत्ते पीसकर दंश पर घाव करके बान्ध दें। कसौंदी के पत्रों का रस सांप पर डाल दें तो वह फट जाएगा ऐसा सुनते हैं। कहते हैं उसके सूंघने से भी सांप मर जाता है। दोहा—

पात कसौंदी विष हरे जड से सांप डरात।
फल से बाघ डरात है, फूल रतौंधी जात॥

यह वर्षा में गुड़गांव तथा रोहतक आदि स्थानों में होती है। २-३ फुट तक ऊंचे घेरे वाली तथा बिना घेरे वाली भी होती है। इसके पत्ते लम्बे कसैले होते हैं। ३-४ लम्बी फली वाला इस का बूटा होता है। फूल प्रायः पीले होते हैं।

१०८—केले के पेड़ के छिलके का रस २ तोले १०-१२ काली मिर्च से पिला दें। आश्चर्यजनक लाभ होता है। दूसरी मात्रा १ घन्टे बाद फिर २-२ घन्टे बाद दें। हरे छिलके को घाव करके दंश पर भी बान्ध दें।

१०९—साधारण सर्प ने काटा हो तो स्थान को चीरकर पीस कर लगा दें।

११०—बेहोश हो जाने पर जमालघोटे की गिरी साबित निम्बू रस में सात

दिन भिगो दें। छाया में सुखायें। फिर उसे सुरमे समान बारीक पीस लें। सर्प काटे बेहोश रोगी की आंख में सलाई से लगायें। आंख दुखनी आ जायेंगी। चिन्ता न करें। रोगी ठीक हो जाएगा।

१०६-११० वें योग स्वामी दयानन्दजी के बताये हैं। पंडित लेखराम जी द्वारा लिखे उनके उर्दू जीवन के अन्त में छपे हैं।

(१११) अंग्रेजी दवा (सेरम) घोड़े के खून में सर्प विष मिला कर तैयार करते हैं।

(११२) लाल फिटकड़ी, नौसादर, नीला थोथा समभाग लेकर पीस कर काटे पर घाव करके भर दें। इससे खून निकलेगा। ५० मिनट बाद बदलकर फिर लगायें। १ माशे मात्रा चेतनता आने तक १५-१५ मिनट बाद पानी या घी से पिलानी चाहिए।

(११३) जिस घर में सांप हो हरमल की धूनी देने से भाग जायेगा।

(११४) कार्बोलिक एसिड सर्प पर डालने से सर्प मर जायेगा। कार्बोलिक पौडर की लकीर को काटकर सांप नहीं जा सकता।

(११५) प्याज के पास सांप नहीं जा सकता।

(११६) गर्भिणी स्त्री को सांप नहीं काटता। गर्भिणी के सामने सांप आ भी जाए तो मारने लगें तो भी वहीं खड़ा रहेगा, ऐसा कहते हैं।

(११७) बेलपत्र खाने और कूट पीस कर लगाने से विष नष्ट होता है। बेल पत्र के पास सांप नहीं जाता। शिवजी इसी के प्रभाव से गले में सांप लटकाए रहते थे। इसके पत्ते जितने चबा सकें चबा लें या कालीमिर्च से घोट कर पी जाए।

(११८) पीपल वृक्ष की जड छाया में सुखा कर कूट कर काठ के डिब्बे में ढक्कन लगाकर रख लें। सर्प के काटने पर २ रत्ती बिना बुझा चूना (कलई) चूर्ण में मिलाकर कोरी चिलम में तम्बाकू की भांति पी लें। रोगी को लेटने न दें। २-३ घन्टे के बाद ऐसी चिलम पिलाते रहें। ३-४ बार पिलाने से वमन होकर जहर उतर जाएगा।

(११९) तीन प्रकार की मकोय होती हैं — काली, लाल, हरी। काली को जब मनुष्य सूज जाता है स्वरस पिलाते तथा साग बनाकर खिलाते हैं। हरी को चरपोटन भी कहते हैं। इसकी रत्ती बहुत कड़वी होती है। उसका फल कपास के

फल की भांति अन्दर होता है। उसे खाते भी हैं। खट मिट्ठा और रंग हरा होता है। इससे चौथिया, तिजारी, सर्व प्रकार के ज्वर चले जाते हैं। सर्प काटे को १ तोला पत्ती खिला दो। नेवला भी साँप काटने पर इसे खाता है।

आयुर्वेद के प्रसिद्ध योग

१ ऋषभागद

जटामांसी, हरेणु, त्रिफला, सहंजना, मजीठ, मुलहटी, पद्माख, वायविडंग, तालीसपत्र, नाकुली, इलायची, तज, तेजपात, चन्दन, भारंगी, पटोल, किणही, पाठा, इन्द्रायण का फल, गूगल, निशोथ, अशोक, सुपारी, तुलसी की मंजरी, भिलावे के फूल इन सब औषधों को बारीक पीस छान लें। शहद, घी मिलाकर सींग में भर दें। १५ दिन पश्चात् कार्य में लायें। यह औषध लगाने और खिलाने के काम आती है। इसकी बहुत ही प्रशंसा की है।

२ चन्द्रोदय अगद

चन्दन, मैनसिल, कूठ, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागरमोथा, सरसों, बालछड़, इन्द्रजौ, केसर, असवन, हींग, सुगन्ध बाला, लामज्जक तृण, सोया, फूल प्रियंगु। इन सबको पीसकर सुरक्षित रखें। यह लगाने तथा सुंघाने के कार्य में आती है। सब प्रकार के विष नष्ट होते हैं। इसमें घी, दूध, मधु मिलकर प्रयोग करते हैं।

३ अजित अगद

वायविडंग, पाठा, अजमोद, हींग, तगर, सौंठ, कालीमिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सैंधा लवण, विड लवण, बिरिया नमक, काला नमक और चित्रक छाल इन सबको बारीक पीसकर छानकर मधु में मिला गाय के सींग में भरकर ऊपर से ढकना लगाकर १५ दिन तक रख दें। इसे सेवन करायें। सर्प विष तथा अन्य सभी विषों को नष्ट करती है। जब इसे पिलाना, आँजना लगाना तथा सुंघाना हो तब इसे घी दूध तथा मधु में मिला लें।

४ महा अगद

निशोथ, इन्द्रायण, मुलहटी, दारूहल्दी, मजीठ वर्ग की सब औषध, सैंधा-

लवण, बिरिया, समुद्र नमक, काला नमक, विड्नमक, सौंठ, कालीमीर्च, पीपल इन सबको महीन पीसकर कपड़े से छान कर शहद में मिलाकर गाय के सींग में भरकर ढक्कन लगायें। १५ दिन पश्चात् इसे कार्य में लावें। इस औषध को घी, दूध और शहद में मिलाकर पिलाने, सुंघाने, आंख में लगाने, काटे हुए स्थान पर लेप करने से अत्यन्त उग्रवीर्य सर्प का विष और सर्वप्रकार के विष नष्ट हो जाते हैं। बहुत उत्तम औषध है। यह महा अगद है। समय पर प्राण रक्षा करती है। सभी ग्रन्थों ने इसकी प्रशंसा की है।

तार्क्ष्य अगद

पुण्डेरिया, देवदारु, नागरमोथा, भूरिछरीला, कुटकी, थुनेर, सुगन्ध, रोहिष तृण, गूगल, नागकेशर वृक्ष, तालीसपत्र, सज्जी, केबटी, मोथा, इलायची, सफेद सम्हालू, शैल्ज गन्ध द्रव्य, कूठ, तगर, फूल प्रियंगु, लोध, रसोंत, पीला गेरू, चन्दन और सैंधा नमक सबको कूट-पीस छानकर शहद में मिलाकर गाय के सींग में भर कर ढक्कन लगाकर १५ दिन रख देवें। इसको तार्क्ष्यो अगद कहते हैं। इसके सेवन से तक्षक सांप का काटा भी बच जाता है। मात्रा छः माशे से १ तोला तक है। अगद ऐसी औषध को कहते हैं जो अनेक औषधियों को मिलाकर बनाई हो जो सर्व प्रकार के विषों का नाश करने वाली हो जिसे हकीम हिरयाक कहते हैं।

दशांग धूप

बेल के फूल, बेल की छाल, बालछड़, फूल प्रियंगु, नागकेसर, सिरस, तगर, कूट, हरताल, मैंनसिल इन सब दवाओं को समभाग लेकर सिल पर जल के साथ खूब पीसकर सांप के काटे हुए मनुष्य के शरीर पर मलो। इसके लगाने से तथा मालिश करने से अत्यन्त भयंकर विष नष्ट हो जाते हैं। यह बहुत ही उत्तम औषध है।

भीम रुद्र रस

मैंनशिल, हरताल, काली मिर्च, देवदारू, शुद्ध सिगरफ, लटजीरे की जड़, कनेर की जड़ और सिरस की जड़ समभाग लेकर कूट कपड़छान करें। रुद्राक्ष तथा विष्णु कान्ता के स्वरस की सौ-सौ भावनायें देकर मूंग के समान गोलियां बनायें। यह आयुर्वेद शास्त्र का भीमरुद्र रस भयंकर सर्प के विष तथा सब विषों के प्रभाव

को नष्ट करता है। यह चेतना रहित मृत प्रायः व्यक्ति को भी चेतना देने वाला है।

घृत चिकित्सा

आयुर्वेद शास्त्रों में घृत चिकित्सा भी अद्वितीय है। घृत बनाने का सामान्य नियम यही है। कल्क अर्थात् औषधियों को पानी में पीसकर गोला बनालें। (औषधियों) से चौगुना गाय का घी। घी से चौगुना (जल) वा गोमूत्रादि लेते हैं फिर सबको चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि से घृत पका लेते हैं।

अमृत घृत

चिरचिटे (आपामार्ग) के बीज, सिरस के बीज, मेदा, महामेदा और मकोय इनको गोमूत्र के साथ बारीक पीसकर कल्क वा लुगदी बनायें, इस लुगदी में घी डालकर गोमूत्र में पकायें, मन्दाग्नि जलायें। जब केवल घृत रह जाए निथार छानकर सुरक्षित रखें। सब वस्तुवें चार-चार गुना अर्थात् १ पाव, घृत १ सेर तथा गोमूत्र ४ सेर लेवें।

घृत की १ तोला मात्रा गाय के दूध में मिलाकर देवें। केवल गोघृत अधिक मात्रा में पिला देने से भी सर्प का विष नष्ट हो जाता है। भारत के ग्रामों की यह सर्प विष की प्रसिद्ध औषधि है। गोघृत तो अमृत है। न मिलने पर भैंस का घी भी खिला सकते हैं।

नागदन्ती आदि घृत

नागदन्ती, निशोथ, दन्ती और थूहर का दूध प्रत्येक चार-चार तोले, गोघृत ६४ तोले, गोमूत्र २५६ तोले सबको मिलाकर चूल्हे पर चढ़ायें और मन्दाग्नि से पकायें। जब गोमूत्रादि जलकर केवल घृत बचे, निथार छानकर सुरक्षित रखें। मात्रा १ तोला दूध से वा वैसे ही पिलायें। इसके सेवन से सर्प, बिच्छू और सर्व प्रकार के विष नष्ट होते हैं।

तण्डुलादि घृत

चुलाई की जड़ और घर का धूंवा दोनों समभाग लेकर पीस लेवें। इनके भार से चौगुणा गोघृत और घृत से चौगुना गोदूध डालकर मन्दाग्नि पर पकायें। केवल

घृत रहने पर उतारकर निथार छानकर सुरक्षित रखें। मात्रा ८ तोला दवा दूध में मिलाकर देने से सर्प विष तथा अन्य विष दूर होते हैं।

मृत्युपाशा घृत

लोध, हरड़, कूठ, हुलहुल, कमल की दण्डी, बेंत की जड़, सींगिया विष (शुद्ध), तुलसी के पत्ते, पुनर्नवा, मजीठ, जवांसा, सतावर, सिंघाड़े, लाजवन्ती और कमल केसर इन सबको समभाग लेकर कूट-पीस छान लें, फिर सिल पर रखकर पानी के साथ पीसकर नुगदी बना लें। फिर नुगदी से चौगुना गोघृत, गोघृत से चौगुना गाय का दूध तथा कल्क सहित सबको मिलाकर मन्दाग्नि से पकायें। जब दूधादि जलकर केवल घृत रह जाये तो उसे छानकर सुरक्षित रखें। जब यह ठण्डा हो जाये तो उसमें घी से कुछ कम मधु मिलाकर रख देवें। इसकी मालिश, नस्य, आंख में डालने, खिलाने, पिलाने से सर्पादि के सभी भयंकर विष नष्ट हो जाते हैं। बहुत ही उत्तम औषध है। यथा नाम तथा गुण वाला घृत है। यह मृत्यु-पाश से मनुष्य को छुड़ा देता है।

तैल चिकित्सा

घृत तो सभी विषों की परमौषध है। किन्तु जिन प्रान्तों में घृत नहीं मिलता वा न्यून मिलता है वहां तुरन्त ही न्यून से न्यून ४०-५० तोले तिल का तेल पिला दें। सर्प दंशित मनुष्य को अवश्य ही लाभ होगा। यदि तिल का तैल न मिले तो सरसों वा अन्य कोई भी तैल रोगी को पिला देवें। तुरन्त लाभ होगा।

रस कर्पूरादि का योग

रस कर्पूर, दार चिकना और नीला थोथा सब तीन-तीन माशे और जमालगोटे की गिरी १ तोला इनको खूब बारीक पीसकर आक के दूध में भिगोकर छाया में सुखायें। सूख जाने पर दो-तीन दिन पश्चात् फिर थोड़ा-थोड़ा आक का दूध डालते रहें। इस प्रकार इस औषध को तीन सप्ताह तक भिगो रखें, फिर सुखाकर बारीक पीस लेवें। सुरक्षित रखें। जहां सर्प ने काटा हो चीरा देकर दो रत्ती औषध उसमें भर देवें। एक बार के दवा भरने से सर्प विष नष्ट हो जाता है। यदि विष का प्रभाव शेष हो तो दो-तीन बार औषध भरकर मलो यह विष को चूसकर बाहर निकाल देती है।

चरक शास्त्र और सर्पदंश चिकित्सा

चिकित्सा में चरक शास्त्र की चिकित्सा सर्वोत्तम मानी गई है। महर्षि चरक ने सर्पदंश की चिकित्सा से पूर्व सर्पों के वर्गीकरण, सर्पों के लक्षण और सर्प विष के लक्षण पर सार रूप में कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं उनको पाठकों के लाभार्थ देना मैं उचित समझता हूं—

सर्पों के भेद

दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तस्तथैव च।
सर्पा यथाक्रमं वातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः॥

(चरक चिकित्सित स्थान अ० २३-२२४)

अर्थात्—दर्वीकर, मण्डली और राजिमान् ये तीन प्रकार के सर्प होते हैं। **दर्वीकर** (फणवाले) सर्प वात को कुपित करते हैं। मण्डली मण्डलों वाले पित्त को कुपित करते हैं और राजिमान् कफ को कुपित करने वाले होते हैं।

सर्पों के लक्षण

दर्वीकरः फणी ज्ञेयो मण्डली मण्डलाफणः।
बिन्दुलेखो विचित्राङ्गः पन्नगः स्यात्तु राजिमान्॥

(अ० २३-१२५)

फण वाले सर्पों को दर्वीकर जानना चाहिये। जब वे फण फैलाते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो दर्वी कड़छी-सी बना दी है। इसलिए इनका नाम दर्वीकर है। मण्डली सर्प उन्हें कहते हैं जिनके फण के स्थान पर केवल मण्डल अर्थात् गोल गोल निशान होते हैं। राजिमान् उन्हें कहते हैं जिन सर्पों के शरीर पर बिन्दुओं की राजि=पंक्तियां लकीरें रेखायें होती हैं इनका शरीर इन बिन्दुओं और रेखाओं से विचित्र होता है।

इनके विष के लक्षण

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णं स्वादु शीतलम्।
विषं यथाक्रमं तेषां तस्माद्वातादिकोपनम्॥

(चरक चिकि०, अ० २३-१२६)

इन तीनों प्रकार के सर्पों का विष भी क्रम से इस प्रकार होता है। दर्वीकर का विष रुक्ष और कटु=चर्पण होता है। मण्डली का विष अम्ल, उष्ण अर्थात् पित्त कारक होता है और राजिमान् का विष मधुर और शीतल अर्थात् कफ को प्रकुपित करता है।

दंश भेद=दर्वीकर

दर्वीकरकृतो दंशः सूक्ष्मदंष्ट्रापदोऽसितः ।
निरुद्धरक्तः कूर्माभो वातव्याधिकरोमतः ॥

(अ० २३-१२७)

दर्वीकरे अर्थात् फण वाले सापों के काटने से उनके दांतों का निशान बहुत सूक्ष्म होता है और उसका चिह्न काला होता है उससे रक्त—खून नहीं निकलता खून रुका हुआ रहता है। दंश स्थान कच्छप के समान उभरा रहता है। वात कारक होने से वायु की व्याधियों को उत्पन्न करने वाला होता है।

मण्डली सर्पों का दंश

पृथ्वर्पितः सशोथश्च दंशो मण्डलिभिः कृतः ।
पीताभः पीतरक्तश्च सर्वपित्तविकारकृत् ॥

(अ० २३-१२८)

मण्डली सांपों का दंश अधिक बड़ा होता है उसमें सूजन होता है उसका वर्ण पीला और लाल होता है। इसमें दाह, जलन, पीड़ा आदि सभी पित्त के विकार होते हैं।

राजिमान् का दंश

कृतो राजिमता दंशः पिच्छिलः स्थिरशोफकृत् ।
स्निग्धः पाण्डुश्च सान्द्रासृक्श्लेष्मव्याधिसमीरणः ॥

(अ० २३-१२९)

ये सांप कफ को कुपित करने वाले होवे हैं। इनका दंश पिच्छिल अर्थात्

लेशवाला अंश लिए होता है सूजन कठिन होता है। गाढा खून निकलता है। सभी लक्षण कफ कुपित होने के होते हैं।

साँपों में स्त्री पुरुषादि के दंश का भेद

वृत्तभोगो महाकायः श्वसन्नूर्ध्वेक्षणः पुमान् ।
स्थूलमूर्धा समाङ्गश्च स्त्री त्वतः स्याद्विपर्ययात् ॥

(अ० २३—१३०)

सांपों में भी स्त्री-पुरुष और नपुंसक तीनों ही होते हैं उनकी पहचान यह है। जो गोल शरीर वाला, बहुत बड़े देहवाला, बहुत जोर से श्वास फेंकने वाला, जिसका सिर मोटा और सारा शरीर एक समान होता है जो ऊपर को आंख किये हुए रहता है। वह पुरुष सर्प होता है। इसके सर्वथा विपरीत लक्षण वाली स्त्री सर्पिणी होती है। नपुंसक सर्प ढीला होता है उसकी आंखें नीचे होती हैं।

इन तीनों के दंशों के भेद

······स्वयो वृण्टिः स्वरहीनः प्रकम्पते ।
स्त्रियः दष्टो विपर्यस्तैरेतैः पुंसा नरोमतः ॥

(अ० २३ श्लोक १३१)

व्यामिश्रलिंगैरेतैस्तु क्लीबदष्टं नरं वदेत् ।
इत्येतदुक्तं सर्पाणां स्त्रीपुंक्लीबनिदंशनम् ॥

(अ० २३, १३१-१३२)

इनके डसने के लक्षण

स्त्री (मादिन) सांपिन से डसे पुरुष की आंखें नीचे रहती हैं, उसका गला बैठ जाता है, वह कांपता है और नर सांप से डसा पुरुष इसके विपरीत जानना चाहिए अर्थात् उसकी आंखें ऊपर को चढ़ती हैं। वह बहुत ऊंचे चिल्लाता, गला खुला रहता है, रोगी कांपता नहीं। जिस मनुष्य को नपुंसक सर्प डसता है उसके लक्षण दोनों के मिले होते हैं। इस प्रकार हमने मादा, नर और नपुंसक के दंश लक्षणों का उपदेश किया।

पाण्डुवक्त्रस्तु गर्भिण्याशूनोष्ठोऽप्यसितेक्षणः ।

गर्भिणी के डसने के लक्षण

गर्भिणी से डसे मनुष्य का मुख पीला पड़ जाता है ओठ सूज जाता है, आँखें काली पड़ जाती हैं।

प्रसूता के डसने के लक्षण

जृम्भो क्रोधोपजिह्वार्तः सूतया रक्तमूत्रवान्।

यदि सर्पिणी बच्चे जन चुकी है और वह उसे डसे तो आदमी जंभाई लेता है, उसे क्रोध आता है और जीभ उसकी सूज जाती है। उपजिह्विका रोग हो जाता है और उसका मूत्र लाल हो जाता है। कोंख फूल जाती है। दर्दें चलती हैं। मूत्र में विशेष रुधिर आता है।

सर्प की सन्तान गोहेरा

सर्पो गोधेरको नाम गोधायास्स्याच्चतुष्पदः।
कृष्णसर्पेण तुल्यः स्यान्नानास्युर्भिन्नजातयः॥

(अ० २३-१३४)

गोहेरा जिसे संस्कृत में गोधेरक कहते हैं वह सर्प और गोधा (गोह) के संयोग से उत्पन्न होता है उसके चार पैर होते हैं वह काले सांप के समान विषैला होता है उसके काटने पर वैसे ही लक्षण दिखाई देते हैं। इस प्रकार इन सांपों की और भी अनेक मिश्र जातियां होती हैं जो सांप तथा अन्य जन्तुओं के परस्पर संयोग से उत्पन्न होती हैं।

अवस्था के अनुसार सर्पविष के भेद

तरुणाः कृष्णसर्पास्तु गोनसाः स्थविरास्तथा।
राजिमन्तो वयो मध्ये भवत्याशीविषोपमाः॥

(अ० २३-१३६)

काले सर्प (दर्वीकर) तरुण (यौवन) दशा में, गोनस (मण्डली) वृद्धि दशा में और राजिमान यौवन और वृद्धावस्था की दशा में आशीविष के तुल्य तीव्र होते हैं।

मन्दविष वाले सर्प

वारिविप्रहताः क्षीणाः भीता नकुलनिर्जिताः ।
वृद्धा बालास्त्वचो मुक्ताः सर्पामन्दविषाः स्मृताः ॥

(अ० १३-१६३ चरक)

जो सांप जल में रहकर निर्बल हो जाते हैं। जो भोजन न मिलने से दुर्बल हैं, जो नेवले आदि से पछाड़े जाते हैं जो बूढ़े हों या बच्चे हों जिन पर से केंचुली उतर गई है वे सर्प मन्द विष वाले होते हैं। (डरे हुए, सर्दी, वायु, धूप, रोग, भूख, प्यास, थकान से पीड़ित, कुशा औषध, कांटों आदि में विचरने वाले सांपों का भी विष मन्द होता है—वाग्भट)

सांप में विष कहां रहता है ?

सर्वदेहाश्रितं क्रोधाद्विषं सर्पो विमुञ्चति ।
तदेवाहारहेतोर्वा भयाद्वा न प्रमुञ्चति ॥१६४॥

सांप के समस्त देह में विष रहता है। क्रोध के कारण सांप उसको देह से, विष ग्रन्थि द्वारा बिलोकर दांत द्वारा दूसरे के शरीर में छोड़ता है। जब उसे अपना आहार करना होता है, तब भय के कारण वह विष को बाहर नहीं निकालता।

सर्पविष चिकित्सा पर मेरे अनुभव

इससे पूर्व सर्प विष की चिकित्सा के लिए अनेक शास्त्रीय योग पहले लिख चुका हूं और बहुत से वैद्य, डाक्टर और हकीमों के अनुभूत योग भी पहले इसी पुस्तक में लिखे हैं। पहले सर्प विष के शरीर में फैलने से बचाने के लिए बन्ध आदि बांधना, अग्नि से जलाना आदि अनेक उपाय रोगी की जीवन-रक्षा के लिए लिखे हैं। यदि सर्प का विष बन्धों से न रुके और उन्हें पार करके ऊपर चढ़ता ही जाये और जलाने. शस्त्र से काटकर खून निकालने से भी कोई लाभ न हो तो उस समय एक उपाय किया जाता है जिसे वैरीकी क्रिया भी कहते हैं वह इस प्रकार है। जिस बन्ध तक विष चढ़ हो गया हो उसके ऊपर मोटे छुरे के पिछले भाग से चीर कर और आग से जलाकर दशित अंग अर्थात् हाथ वा पैर के चारों ओर १/४ इन्च गहरा और गोल चीरा बना देवें। इस प्रकार जलाकर नसों का सम्बन्ध तोड़

देने से विष चीरे के गढ़े को लांघकर ऊपर नहीं जा सकेगा। परन्तु यह सावधानी रखनी चाहिये कि ज्ञानतन्तु जलकर झूठे न हो जायें। क्योंकि ज्ञान तन्तुओं के झूठे हो जाने से वे काम न देंगे। अतः यह चतुर शल्य-चिकित्सक का ही कार्य है, इस उपाय से रोगी के प्राण बच जाते हैं। घाव पर भृंगराज तैल अथवा नारियल तैल लगाना चाहिये अथवा जले हुए पर जो औषधि लगाई जाती है उनमें से कोई एक लगायें। रसायनशाला गुरुकुल झज्जर अथवा कन्या गुरुकुल नरेला का संजीवनी तैल इसकी अच्छी औषध है।

सर्प विष के सारे शरीर में फैल जाने पर शिरावेधन के विषय में महर्षि धन्वन्तरि जी सुश्रुतसंहिता में इस प्रकार लिखते हैं—

समन्ततः शिरावंशाद्विध्येत्तु कुशलो भिषक्।
शाखाग्रे वा ललाटे वा व्यध्यास्ता विसृते विषे॥

—कल्पस्थान, अ० ५, श्लोक १४

अर्थात् विष के शरीर में फैल जाने पर कुशल वैद्य को दंश के चारों ओर शिराओं का भेदन करना चाहिये। इस प्रकार शिराओं का सम्बन्ध टूटने से रोगी बच जाता है, यह मैं पहिले लिख चुका हूं। शरीर में विष फैलने पर जब रोगी की अवस्था बिगड़ जाये तो शिराओं को हाथ पैर के अग्र भाग अथवा माथे में भेदन करना चाहिये। क्योंकि विष के फैल जाने पर सिर बींधना जिसे फसद खोलना कहते हैं, प्राण बचाने की अच्छी क्रिया है। इस विषय में सुश्रुत में लिखा है—

रक्ते निर्ह्रियमाणे तु कृत्स्नं निर्ह्रियते विषम्।
तस्माद्विस्रावयेद्रक्तं सा ह्यस्य परमा क्रिया॥

कल्प० अ० ५, १५

शिरोवेधन की क्रिया से निकलते हुए रक्त के साथ सम्पूर्ण विष भी निकल जाता है। इसलिए रक्त का (विस्रावण) निकालना एक श्रेष्ठ चिकित्सा है।

कई बार ऐसा होता है कि सर्प के काटने पर इतना सूजन बढ़ जाता है कि शिरा और नस आदि कुछ भी दिखाई नहीं देती। ऐसी अवस्था में सींगी, तूम्बी, छोटी कटोरी या गिलास में स्प्रिट जलाकर काटे हुए स्थान में चीरा लगाकर

रखकर दबादें और भली-भांति रक्त को निकाल दें या जोंक द्वारा रक्त को निकलवा लें। ऐसे अवसर पर ये क्रियायें बड़ी उपयुक्त होती हैं। किन्तु गर्भवती स्त्री, बालक और बूढ़े को यदि सर्प काटे तो उनकी शिरा नहीं वेधनी चाहिये। उनकी तो मृदु चिकित्सा ही करनी चाहिये।

किन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिये कि आवश्यकता से अधिक रक्त शरीर से न निकल जाये। कई बार रोगी की मृत्यु रक्त के अधिक निकल जाने से ही हो जाती है। कई चिकित्सक जब विष निकालने की क्रिया करते हैं तो रक्त को रोकने में वे विफल हो जाते हैं। आवश्यकता से अधिक रक्त निकल जाता है और रोगी मर जाता है। अच्छे-अच्छे वैद्य और डाक्टर भी इस निकलते हुए खून को रोकने में असमर्थ देखे जाते हैं। पित्त प्रकृति के (मण्डली) सर्प जो विषैले होते हैं उनके काटने पर दंश स्थान, मुख, गुदा आदि मार्गों से स्वयं अधिक मात्रा में निकलने लगता है। तब भी रक्त के रोकने के लिए बाह्य तथा आभ्यन्तर चिकित्सा करनी चाहिये। सुश्रुत में लिखा है—

समन्तादगदैर्दंशं प्रच्छयित्वा प्रलेपयेत्।
चन्दनोशीरयुक्तेन वारिणा परिषेचयेत्॥

—कल्प० अ० ५, १६

जब रक्त को बन्द करना अभीष्ट हो तब दंशित स्थान को चारों ओर से पोंछकर रक्तावरोधक औषधियों का लेप करें और खश मिले हुए चन्दन के पानी से परिषेक (सिंचन) करें।

बाह्य चिकित्सा

१—फिटकरी को भली भांति भून लें और बारीक पीसकर क्षत स्थान पर जहां से रक्त निकल रहा हो दबाकर भर दें और ऊपर से मिट्टी बांध दें। इससे रक्त का निकलना बन्ध हो जायेगा।

२—घिया भाठा अर्थात् शैलखड़ी जिसे यूनानी संगेजरात कहते हैं, उसे खूब बारीक पीस कपड़छान करके काटे हुए स्थान पर जहां से खून निकलता हो, अच्छी तरह भर दें और पट्टी बांध दें।

३—रूई को जलाकर उसकी राख को कपड़छान करके फिटकरी वा शैल-खड़ी की भांति दंशित स्थान में अच्छी तरह भरकर ऊपर से अच्छी तरह पट्टी

बांध दें।

४—यदि अधिक मात्रा में रक्त निकलने लगे तो उसे रोकने के लिये चरक शास्त्र में इस प्रकार लिखा है—

अतिप्रवृते वटादिभिः शीतलैर्लेपः ॥

(चिकित्सित• अ० २३, श्लोक ४१)

यदि रक्त अधिक प्रवृत्त होकर अधिक मात्रा में निकलने लगे तो बड़, गूलर, पीपल आदि दूध वाले वृक्षों तथा स्तम्भक औषधियों का शीतल लेप लगाना चाहिये। शीतल लेपों से तथा परिषेचनों से रक्त गाढ़ा हो जाता है और जम जाता है। इससे रक्त निकलना और (गति) बाहर निकलना (प्रवृत्ति) चक्कर लगाना दोनों ही बन्द हो जाते हैं। इसलिए रक्त की गति में बाधा डालने से विष के प्रसार में भी बाधा पड़ जाती है। रक्त की गति में बाधा शीतल लेपादि से की जाती है।

सामान्यावस्थाओं में तो उपर्युक्त औषधियों से रक्त निकलना बन्द हो जाता है। असाधारण अवस्था में जब रक्त बन्द न होता हो तो निम्न चिकित्सा करें। ऐसी अवस्था में बाह्य और आभ्यन्तर दोनों चिकित्सा करें। केवल बाह्य चिकित्सा से कार्य नहीं चल सकता। जिस स्थान से रक्त निकल रहा हो उस स्थान पर संजीवनी बूटी जिसे कुछ वैद्य विशल्यकरणी भी कहते हैं हरी ताजी उखाड़कर रगड़कर बारीक पीसें और इसका लेप चिरे हुए स्थान पर कर दें अर्थात् जहां से खून बह रहा हो वहां कर दें अथवा इसकी टिकिया बनाकर दंश स्थान पर रखकर पट्टी से बांध दें। इसकी टिकिया को घी या तैल में पकाकर ठण्डा करके बांधने पर बड़ा लाभ होता है। यह बूटी गुणों की दृष्टि से अपनी समता नहीं रखती। किसी भी कारण से रक्त निकल रहा हो, इसके उपरिलिखित प्रयोगों से तुरन्त ही बन्द हो जाता है। रक्त को रोकना पीड़ा को दूर करना जखम को भरना आदि अनुपम गुण इसमें देखे जाते हैं। इसके विषय में कभी विस्तार से लिखूंगा। यह वही बूटी है जिसे हनुमान् लक्ष्मण के लिये सुषेण वैद्य के निर्देशानुसार पर्वत से लाया था। इसके विषय में एक लेख कई वर्ष हुए तब सचित्र आयुर्वेद पत्रिका में निकला था। मैंने भी इसके विषय में पर्याप्त अनुभव किया है। आपकी प्रिय रसायनशाला गुरुकुल झज्जर तथा कन्यागुरुकुल नरेला का जादू भरा

संजीवनी तैल इसी संजीवनी बूटी की कृपा है। यह बूटी दिनों का काम घण्टों और घण्टों का काम मिनटों में करती है। इसी कारण उपर्युक्त सभी गुण संजीवनी तैल में विद्यमान हैं। उसके प्रयोग करने वाले सभी आश्चर्य करते हैं। इसके विषय में विस्तार से जानना चाहें तो रसायनशाला गुरुकुल झज्जर की 'विशेष औषधियां' नामक सूचीपत्र में पढ़ें जिसे हम संतसग स्वाध्याय नामक सुधारक अंक में भी दे चुके हैं। यदि कोई भाई संजीवनी या विशल्यकरणी बूंटी का नमूना मंगाकर देखना चाहें तो आठ आने का डाक टिकट भेजकर मंगवा सकते हैं।

इसी प्रकार संजीवनी तैल अथवा भृंगराज तैल में रुई का फोया भिगोकर रक्त निकलते हुए क्षत स्थान पर रखकर पट्टी बांध दें इससे भी रक्त निकलना बन्द हो जायेगा।

खरेंटी के पत्ते बारीक पीसकर लेप करने से भी रक्त का निकलना बन्द हो जाता है। इसी प्रकार जल पीपल, भृंगराज आदि को पीसकर टिकिया बनाकर बांधने से रक्त निकलना बन्द हो जाता है। किन्तु जब एकाध स्थान से रक्त निकलता हो तब बाह्य चिकित्सा से लाभ हो सकता है। जब मुख, दांत, नासिका, गुदामार्ग और मूत्र मार्ग से यही नहीं शिराओं के फट जाने से शरीर में अनेक स्थानों से रक्त बहने लगता है यहां तक कि रोगी कभी-कभी पाव-पाव भर और आध सेर तक रक्त बार-बार वमन करने लगता है। तब चिकित्सक के सामने एक विचित्र समस्या खड़ी हो जाती है। ऐसी अवस्था में महावासादिघृत, शतावरी घृत अथवा सभी प्रकार के विषों की परमौषध अमृतघृत थोड़ी मात्रा में मधु मिलाकर दूध में बार-बार रोगी को पिलाना चाहिये। किन्तु ये घृत गोघृत से तथा शास्त्रीयविधि के अनुसार तैयार किये गये हों तभी पूर्ण लाभ करते हैं। और भी किसी कारण से शरीर से रक्त निकलता हो तो उपर्युक्त घृतों का सेवन रामबाण के समान काम करता है। मैंने इसका अनुभव अनेक रोगियों पर किया है।

ईश कृपा से इनके सेवन कराने से रोगियों की चिकित्सा में मुझे सदैव सफलता मिली है। एक बार में छ: माशे से लेकर आध पाव घृत तक देश, काल और रोगी की अवस्था के अनुसार उपयोग करा सकते हैं।

इसी प्रकार कुष्माण्डावलेह और उशीरासव का सेवन भी रक्त के रोकने में बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है। उपर्युक्त औषधियों के योग में आगे चलकर

लिखूंगा।

एक साधुओं वाला छोटा-सा जादू भरा टोटका भी जिसका मैंने बहुत से रोगियों पर अनुभव किया है अपने पाठकों की भेंट करता हूँ। मूल्य की दृष्टि से यह बहुत ही सस्ता है। साधारण, कम विष वाले सर्पों के काटने पर तो केवल इसका ही प्रयोग पूर्ण चिकित्सा कर काम देता है। वह इस प्रकार है। नागकेशर 'एक पाव; बढ़िया 'मिश्री एक पाव 'दोनों को बारीक पीसकर कपड़छान कर लें और एक-एक तोले की मात्रा बना दें। एक तोला यह औषध और एक छटांक गाय का ताजा मक्खन (यदि मक्खन न मिले तो गाय का घी ले लें) दोनों को मिलाकर रोगी को एक बार में खिलादें यदि एक बार में न खा सके तो दो बार में खिलादें। रोगी की अवस्था के अनुसार इसे बार-बार सेवन करायें। इस छोटे से चुकटले ने रोगियों के बड़ी भयंकर अवस्था में भी प्राण बचाये हैं। गाय के ताजा मक्खन के साथ यह तुरन्त और अत्यन्त लाभ करता है। इसका प्रयोग खूनी बवासीर के रक्त को भी रोक देता है। इन औषधियों के साथ रोगी को भोजन के स्थान पर गाय या बकरी का दूध उपर्युक्त दवाओं का घृत या गोघृत मिलाकर देना श्रेयस्कर है।

यदि रोगी का रक्त भी निकलता हो और ज्वर भी चढ़ा हुआ हो ऐसी अवस्था में उशीरासव और अमृतारिष्ट मिलाकर देना चाहिए। आमलक्यादि लौह, रक्त पित्तान्तक रस, सुधानिधि रस आदि आयुर्वेद के प्रसिद्ध रोगों का सेवन भी खून के रोकने में लाभदायक है। इसी प्रकार द्राक्षा ५ नग, खश (उशीर) ६ माशे, पद्माख ६ माशे, आंवला सूखा ६ माशे, इन सबको कूट और कुचल कर पाव भर जल में मिट्टी के पात्र में सायंकाल भिगो दें। रोगानुसार अधिक मात्रा में भिगो सकते हैं। रात को छत के ऊपर खुले आकाश में रख दें। प्रात: मल कर छान लें। एक तोला मिश्री मिलाकर रोगी को पिलायें यह एक मात्रा है। जितनी मात्रा रोगी को देना उचित समझें, उतनी मात्रा में भिगो देना चाहिए। इसी प्रकार हरे बांसे के पत्तों का रस ४ तोले, बकरी का दूध एक पाव, मिश्री १ तोला, मधु एक तोला इन सबको एक बार ही रोगी को पिला दें। यह एक मात्रा है। यह रक्त को रोकने के लिए बहुत अच्छी औषध है।

रक्त को रोकने के लिये अनेक योग इसलिये दिये हैं क्योंकि प्रतिवर्ष बड़े-बड़े हस्पतालों में अच्छे-अच्छे डाक्टरों के द्वारा चिकित्सा करने पर भी मण्डली पित्त

प्रकृत्ति के सर्पों के काटे हुए रोगियों का खून निकलना बन्द नहीं होता और रक्त अधिक निकलने के कारण इनकी मृत्यु हो जाती है। कुछ वर्ष पूर्व मुझे हरयाणे के एक राजकीय हस्पताल के डाक्टर मिले उन्होंने मुझे बताया कि उन द्वारा सब प्रकार की चिकित्सा करने पर भी सर्प के काटे हुये पांच रोगियों की मृत्यु इस प्रकार हुई कि वह उनके बहते हुए खून को बन्द न कर सके। इसी प्रकार एक प्रेम नाम का युवक जो बहुत ही उद्दण्ड था और सांप आदि के पकड़ने में बड़ा दुस्साहसी था, वह डाक्टर फकीरचन्द जी का लड़का था जो नरेला व खरखोदा के सरकारी हस्पताल में अनेकों वर्ष डाक्टर रहे, उसने खरखौदे में एक पित्त प्रकृति का मण्डली सर्प पकड़ लिया, उसने उसे काट खाया। डाक्टर का पुत्र था, सभी प्रकार की यथोचित डाक्टरी चिकित्सा की गई, किन्तु अधिक खून निकलने से उसकी मृत्यु हो गई, उसे बचा नहीं सके। इसी प्रकार एक दूसरी घटना है—

चौधरी मित्रसेन जी आचार्य खांडा खेड़ी जिला हिसार निवासी के पिता को इसी प्रकार के पित्त प्रकृति वाले मण्डली सर्प ने काट खाया। ये धनी व्यक्ति हैं, उन्होंने अपने पिता को रोहतक के बड़े मैडिकल हस्पताल में चिकित्सा के लिए भरती करवाया। तीन चार दिन तक चिकित्सा होती रही। शरीर से रक्त निकलता रहा। बहुत अधिक मात्रा में खून निकल गया। रोगी पिता और सेवक पुत्र दोनों बहुत ही घबरा गये। नाड़ी कमजोर पड़ने लगी। डाक्टरों को बार-बार कहा कि इस खून को रोकिये, किन्तु वे रोकें तो तब जब उनके पास रोकने की कोई औषध हो।

चौ० मित्रसेन मेरे पास घबराये हुए भागे आये और कहने लगे कि पिता जी को सांप ने काटा है और लगातार कई दिन से काटे हुए स्थान से खून बहता है। डाक्टर लोग रोज बहकाते हैं कि आज बन्द हो जायेगा कल बन्द हो जायेगा, शरीर खून से खाली हो गया है। उनकी रक्त पूर्ति के लिए कई बोतलें खून की चढ़वा दी हैं। लेकिन सब व्यर्थ। खून सारा बाहर निकल जाता है। मैंने उनसे निवेदन किया कि आप हस्पताल में तो बाहर की औषध दे नहीं सकेंगे इसलिए पिता जी को बाहर घर पर ले आयें वो मेरे कहने से घर ले आये उनको 'प्रवाल पञ्चामृत' आदि औषध दी गई जिनसे उनको लाभ हुआ। फिर उन्हें कुछ रक्त की कमी पूरी करने के लिए रक्त की बोतलें चढ़ाई गई। इसी प्रकार एक गरीब नाई की कन्या को माजरा दूबलधन में पित्त प्रकृति वाले मण्डली सर्प ने काट लिया। खून की उलटी होने लगी। सारा घर खून से सन गया. उसकी हमने चिकित्सा की।

ईशकृपा से उसके प्राण बच गये। उस गरीब आदमी ने इसका बहुत ही ऐहसान माना। अब कभी मैं माजरा गया तो उस उपकार के बदले में मेरी सेवा करने के लिये मेरे पास ही खड़ा रहता था।

इसी प्रकार एक दिन मैं दूबलधन से वर्षा ऋतु में मिलकपुर आया, वहाँ पर एक व्यक्ति जो राज वा लकड़ी का काम करता था, उसे कई दिन से पित्त प्रकृति वाले मण्डली सर्प ने काट रखा था, उसकी चिकित्सा एक सपेरा कर रहा था। उसके घरवालों ने मुझे दिखाया। उस समय भी उसके दंश स्थान से खून बह रहा था। रोगी की अवस्था अच्छी नहीं थी। नाड़ी बहुत ही निर्बल पड़ गई थी। रोगी मृत्यु के मुख में गया हुआ था। मैंने सपेरे से कहा आप क्या चिकित्सा कर रहे हो, इसका तो सब खून निकल गया। आपने रोका क्यों नहीं, फिर कैसे बचेगा। वह हाथ जोड़ने लगा और बोला मैं तो जो कुछ जानता था, सब कुछ कर लिया, खून रुकता ही नहीं। मेरे साथ मेरा ब्रह्मचारी देवशर्मा था, मैंने उसे कहा कि देखो मेरी डायरी में अमृता (नाकुली) जड़ी का कुछ भाग रखा होगा वह ढूंढकर लाओ। उस रोगी के सौभाग्य से मेरी डायरी में नाकुली बूटी मिल गई। उसे रगड़कर गाय के मक्खन में मिलाकर रोगी को दिया। देते ही तुरन्त खून रुक गया। रोगी के प्राण बच गये। फिर उसके घरवाले गुरुकुल जाकर और औषध ले आये। रोगी सर्वथा भला चंगा हो गया। इसी प्रकार न जाने कितने अनगिनत रोगियों की हमने चिकित्सा करके ईश्वर की कृपा से प्राण बचाये हैं। इसलिए रक्त को शरीर से अधिक मात्रा में निकलने से रोकने के लिए उशीरासव आदि औषधों का उल्लेख नीचे देता हूं—

उशीरासव

खस, नेत्रबाला, लालकमल, गम्भारी के फल, नीलोफर, प्रियंगु, पद्माख, लोध, मजीठ, धवांसा, जलजमनी, चिरायता, बड़ की छाल, गूलर की छाल, कपूर, पित्तपापड़ा, श्वेत कमल, पटोलपत्र, कचनार की छाल, जामुन का गोंद, सेंभल का गोंद ये चीजें प्रत्येक ४-४ तोला लेकर चूर्ण कर लें। मुनक्का १ सेर, धाय फूल १३ छटांक लेकर २६ सेर पानी में डाल दें। और खाण्ड ५ सेर तथा शहद ५ सेर इसमें मिलाकर जटामांसी तथा मिर्च के चूर्ण की धूनी दिये हुए मर्त्तबान में मुंहबन्द करके रख दें। एक महीने तक बन्द रखने के बाद निकाल कर छान लें।

यह उशीरासव खून के किसी भी स्थान से निकलने को बन्द कर देता है साथ ही यह रक्तपित्त को नाश करने वाला है। पाण्डु,कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, सूजन इत्यादि रोगों में भी लाभ करता है। यह दो तोले औषध दो तोले जल में मिलाकर ली जाती है, यह एक मात्रा है। आसवों का सेवन भोजन के बाद किया जाता है।

कुष्माण्डावलेह

बड़ा बढिया मोटा मिठाई का पेठा लेकर उसे छील लें। फिर उसके बीज भी निकाल दें तथा छोटे २ टुकड़े कर लें। ये टुकड़े ५ सेर ले लें। एक बर्तन में १० सेर जल डालकर इन्हें पकालें। जब जल ५ सेर रह जावे तो उतार लें और पेठे को तथा जल को अलग-अलग कर लें। फिर पेठे के टुकड़ों को थोड़ी देर धूप में रख-कर उन्हें अच्छी तरह काटों से बींध लें या घियाकस में से निकाल लें। फिर ताम्बे की कलईदार कड़ाही में गाय का ८ छटांक घी डालकर पेठे को भून लें। जब ठीक भुन जाये तो उसमें पहले जो ५ सेर जल पकाया था, वह डाल दें और ५ सेर खांड डाल दें तथा मन्दाग्नि पर पकायें। जब अवलेह सिद्ध हो जावे तो उसे उतार लें और उसमें, पीपल, जीरा, सोंठ, धनिया, तेजपात, इलायची, कालीमिर्च, दाल-चीनी ये चीजें दो छटांक लेकर खूब बारीक पीसकर डाल दें तथा ऊपर से ४ छटांक मधु भी डाल दें। यह अवलेह तैयार हो गया। इसे बलाबल के अनुसार सेवन करें। इससे भी किसी भी अंग से खून निकलना बन्द हो जाता है साथ ही यह अवलेह रक्त पित्त क्षयरोग ज्वर, शोष, तृष्णा, वमन, श्वास, खांसी आदि रोगों को नष्ट करता है। उरःक्षत को ठीक करता है। वीर्य को बढ़ाता है। शरीर को पुष्ट तथा बलवान् बनाता है। इसकी मात्रा १ तोला है। गाय तथा बकरी के दूध के साथ इसका सेवन करना चाहिये।

प्रवालपञ्चामृत

शरीर से सर्प विष के कारण अधिक रक्त निकलने से जहां शरीर निर्बल होता है, वहां हृदय और मस्तिष्क भी निर्बल हो जाते हैं। रक्त को रोकने के लिए और सर्व प्रकार की निर्बलता को दूर करने के लिए प्रवालपञ्चामृत का प्रयोग करना चाहिये। यह रामबाण के समान अचूक औषध है।

योग— प्रवालपञ्चामृत का योग इस प्रकार है।

प्रवाल पिष्टि, कमल फूल के रस में चन्द्रमा की चांदनी में खरल करके करनी चाहिये जितनी अधिक भावना कमल के रस की देंगे उतनी ही गुणकारी होगी। इसी प्रकार मुक्ता की पिष्टि करनी चाहिये। प्रवाल पिष्टि, मुक्तापिष्टि, शंख भस्म, कौड़ी भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म, इन पांचों को समभाग लें। इनको अच्छे पक्के खरल में रगड़कर सुरमे के समान बारीक कर लें और किसी मजबूत शीशी में डाल दें। यही प्रवालपञ्चामृत है।

इसकी मात्रा दो रत्ती है। मधु, मलाई, मक्खन किसी चीज में लें, जब तक रक्त बन्द न हो। एक दो घण्टे के अन्तर से देते ही रहें। रोगी की अवस्था के अनुसार इसकी मात्रा न्यून वा अधिक भी हो सकती है।

अमृत घृत का योग

अमृत घृत का एक छोटा योग हम पहले भी लिख चुके हैं किन्तु चरकशास्त्र का लिखा हुआ यह योग सर्वश्रेष्ठ है—जो इस प्रकार है—

शिरीषत्वक्त्रिकटुकं त्रिफला चन्दनोत्पले ।
द्वे बले शारिवाऽऽस्फोता सुरभीनिम्बपाटलाः ॥२४१॥
बन्धुजीवाढकीमूर्वावासासुरसवत्सकान् ।
पाठां कोठाश्वासगन्धार्कमूलयष्ट्याह्वा पद्मकान् ॥२४२॥
विशालां बृहतीं लाक्षां कोविदारं शतावरीम् ।
कटभीदन्त्यपामार्गानाम् पृश्निपर्णी रसाञ्जनम् ॥२४३॥
श्वेतभङ्गाम्लसुरको कुष्ठचाव प्रियङ्गुकान् ।
विदारीं मधुकं तारं करञ्जस्य फलं वचाम् ॥२४४॥
रजन्यौ लोध्रमक्षांशं पिष्ट्वा साध्यं घृताढकम् ।
तुल्याम्बुच्छागगोमूत्र्याढके तद्विषापहम् ॥२४५॥
अपस्मारक्षयोन्मादभूतग्रहगरोदरम् ।
पाण्डुरोगान्क्रिमीन् गुल्मान्प्लीहोदस्तम्भकामलाः ॥२४६॥
हनुस्कन्धग्रहादींश्च पानाभ्यञ्जननावनैः ।
हन्यात्संजीवयेच्चापि विषोद्वेगमृतान्नरान् ।
नाम्नेदममृतं सर्वविषाणां स्याद् घृतोत्तमम् ॥२४७॥

(चरक संहिता अ० २३)

सिरस की छाल, सौंठ, काली मिर्च, पीपल (तीनों त्रिकुट), हरड़, बहेड़ा, आंवला (तीनों फल), चन्दन, नीलोफर, दोनों बलाएं, सारिवा (अनन्तमूल), आफोता (हाफर माली), सुरभि, नीम की छाल, पाटला की छाल, बन्धुजीव (दोपहरिया), आढ़क (अरहर) मूर्वा की जड़, वासा (अडूसा), सुरस (तुलसी), वत्सक (कुटजो), इन्द्र जौ की छाल, पाठा अंकोर, अश्वगन्धा, मदार की जड़, मुलहटी, पद्माख विशाला (इन्द्रायण), बृहती (बड़ी कटेरी), लाख, कोविदार (कचनार), शतावरी, कटभी (ज्योतिष्मती), दन्ती, अपामार्गा, (ओंगा), पृश्निपर्णी, रसांजन (रसौंत), श्वेत अश्वबाण (सफेद झिण्टी), अपराजिता, कूठ, देवदारु, प्रियंगु, विदारीकन्द, महुए की छाल, करंजवचा, दोनों हल्दी, लोध पठानी इन सबमें प्रत्येक का एक तोला प्रमाण लेकर पीसकर, इसमें ५ किलो घी, १२ किलो जल १२ किलो गोमूत्र तथा १२ किलो बकरी का मूत्र डालकर मंदी आंच पर पकायें जब पककर केवल घी शेष रह जाये तो निथार कर छान लें। यही अमृत घृत है। वैसे तो सामान्य रूप से घृत की मात्रा १ तोला ही होती है किन्तु सर्पदंश में विष के वेग को देखकर इसकी मात्रा १० तोले तक दे सकते हैं। यह अगद भयंकर विष को भी दूर करता है और अपस्मार, क्षय, उन्माद, भूत (कीटाणुओं से उत्पन्न रोग), मानस रोग, उदर रोग, पाण्डु, कामला रोग, क्रिमी, गुल्म, प्लीहा, उरुस्तम्भ, हनुग्रह, स्कन्धग्रह इत्यादि रोगों को पान, अभ्यंग और नस्य-द्वारा सेवन करने से दूर करता है। विष की तीव्रता से जो रोगी मृत प्राय हों उनको पुनः जीवित भी कर सकता है यह सभी विषों के रोगी के लिए अमृत ही है। यह सर्वोत्तम घृत है।

आढ़क इत्यादि के विषय में पूर्ण परिचय न होने से तोल तोले इत्यादि में ही लिख दिया।

डाक्टर और सर्पदंश की चिकित्सा

भारत वर्ष के ही नहीं, पाश्चात्य देशों के सभी डाक्टर ऐसा मानते हैं कि आयुर्वेद शास्त्र और यूनानी चिकित्सा पद्धति (हिक्मत) में सर्पविष की चिकित्सा नहीं हैं। इसी मत के अनुसार इन विदेशी डाक्टरों का अन्धानुकरण करने वाले अनेक वैद्य भी इसी मत को मानने वाले मिलते हैं। इसी प्रकार के श्री रमेश वेदी स्नातक विश्व विद्यालय गुरुकुल कांगड़ी हैं। वैसे तो वे आयुर्वेदालंकार हैं और

गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक तथा माने हुए विद्वान हैं। आप बहुत सी पुस्तकों के लेखक भी हैं। आपने बहुत वर्ष हुए सांपों की दुनियां नामक पुस्तक लिखा था वह मैंने आद्योपान्त पढ़ा था। इसके अतिरिक्त भी आपने बहुत से पुस्तक लिखे हैं। आपको कई पुस्तकों पर यू० पी० की सरकार से पारितोषिक भी मिले हैं। आपको सर्प पकड़ने उन्हें पालने उनके विष को दोहन करके निकालने और इनके विषय में अनेक प्रकार के अनुभव करने की बड़ी रुचि है।

कुछ ही दिन हुए कन्या गुरुकुल नरेला में मुझे मिलने के लिए पधारे थे, उसी दिन अकस्मात् हड़ताल निवादा में किसी महिला को सर्प ने काट लिया था, उसके लिए एक व्यक्ति मेरे पास सर्प विष की औषध लेने आया मैंने उनके सम्मुख ही रोगी के लिए अपनी बनाई हुई सर्पदंशामृत की दो मात्रायें दीं और श्री रमेश जी वेदी को बताया कि यह हमारी औषध सर्पविष की अमोघ वा अद्वितीय औषध है। उन से मैंने इस विषय पर पर्याप्त वार्तालाप किया। मैंने उनको बताया हम इस औषध से हजारों रोगियों के प्राण बचा चुके हैं। प्रतिवर्ष हमारे पास चिकित्सार्थ दूर-दूर से सर्प से दंशित रोगी आते रहते है। मैंने उनको पुरानी बात भी याद दिलाई मैंने बहुत वर्ष हुए सांपों की दुनियां में आपका लेख पढ़ा कि आयुर्वेद शास्त्र में सर्पविष की कोई औषध नहीं है इनके इसी प्रकार के लेख साप्ताहिक हिन्दुस्तान में भी प्रकाशित हुए थे।

उन लेखों को पढ़कर मुझे बहुत आश्चर्य तथा दुःख हुआ था कि यह लिखने का आपको कैसे साहस हुआ, जबकि भारत देश की पवित्र भूमि पर एक दो नहीं, सहस्रों सर्प विष चिकित्सक अब भी विद्यमान हैं तथा पहले भी हो गये हैं। जो भयंकर सर्पों के काटने पर निश्चय से रोगी को मृत्यु मुख से बचा लेते हैं। कितने ही चिकित्सक तो सर्वथा परोपकार भाव से निःस्वार्थ ही चिकित्सा करते हैं। कितने ही स्वार्थी मूर्ख भी होते हैं जो मृतसञ्जीवनी औषधियों को छिपाये रखते हैं। किसी को भी अपने जीवन काल में न बताकर संसार से चले जाते हैं उनके साथ ही उनकी औषधियां भी चली जाती हैं। कितने दुःख व लज्जा की बात है कि सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले ऋषियों के देश में उनकी सन्तान इतनी स्वार्थी और मूर्ख हो गई है कि अपने प्राचीन पुरुषों की खोजी हुई अमृत तुल्य औषधियों को सर्व साधारण में प्रचार करने के स्थान पर छिपाते रहते हैं। जो सज्जन परोपकार के भाव से बिना कुछ लिये सेवा करते हैं, न वे समाचार पत्रों में लेख लिखते

हैं, न ही और किसी प्रकार का अपना विज्ञापन करते हैं। यदि वे किसी को बताते हैं—तो कुछ कठोर नियमों (शर्तों) के साथ बताते हैं। ऐसी अवस्था में खोज करने वालों के लिए सर्प विष की चिकित्सा एक जटिल समस्या बनी हुई है।

इन्हीं कठिनाइयों के कारण तथा डाक्टरों की खोज के आधार पर ही अथवा यदि मैं भूल नहीं करता तो स्वयं सर्प विष की चिकित्सा का अनुभव न करने के कारण ही माननीय पं० रमेश वेदी जी ने यह लिखा है कि आयुर्वेद शास्त्रों में सर्प विष की चिकित्सा नहीं है। जिन डाक्टरों के अनुभव के आधार पर आपने यह लिखने का साहस किया है वे बम्बई की हाफकिन इन्स्टीच्यूट की औषध गुण विज्ञान प्रयोगशाला में सर्पविष उतारने वाली औषधियों की उपयोगिता जानने के लिए प्रयोग करते रहे हैं। उनके शुभ नाम डा० श्री के० एस० म्हस्कर और श्रीयुत जे० एफ० कायस हैं। श्री वेदी जी ने अपना अनुभव कोई नहीं लिखा।

प्राय: डाक्टर सदैव ही सर्पविष चिकित्सा का ही क्या, आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का खण्डन करते रहते हैं, क्योंकि डाक्टरों की ऐलोपैथी, होम्योपैथी आदि किसी भी पद्धति में सर्पविष चिकित्सा नहीं है। डाक्टर सर्पविष चिकित्सा में सर्वथा असफल हैं, अत: वे आयुर्वेद की सफलता को इस विषय में कैसे सहन कर सकते हैं। किन्तु उनका अनुकरण हमारे विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक पं० रामेश वेदी आयुर्वेदालंकार को अपने स्वयं के किसी अनुभव के बिना नहीं करना चाहिए था और न ही इस प्रकार का लेख लिखना चाहिए कि जिससे आयुर्वेद की उच्चता के स्थान पर हीनता (जो यथार्थ में नहीं है) सिद्ध हो। मैं उन माननीय डाक्टरों के परीक्षण के विषय में तो आगे चलकर समाधान करूंगा। अब तो मैं अपने अनुभव तथा अनेक सर्पविष चिकित्सकों के आधार पर लिखने का साहस करता हूं कि सर्प विष की चिकित्सा जितनी अच्छी आयुर्वेद शास्त्रों में है, तथा ऋषियों की पवित्र भारत भूमि पर है, ऐसी न किसी अन्य विदेशी चिकित्सा पद्धति में है, न संसार के अन्य किसी देश वा स्थान पर है।

मुझे अपने जन्म स्थान नरेला में आर्य विद्यार्थी आश्रम में रहते हुए सर्प ने काटा था। इसी प्रकार कई अन्य ब्रह्मचारियों को सर्पों ने काटा तथा आश्रम के आयुर्वेदिक औषधालय के सफल चिकित्सक श्री वैद्य कर्मवीर जी को भयंकर सर्प ने काटा, तब से ही मुझे सर्प विष चिकित्सा के ज्ञान की जिज्ञासा हुई तथा उसी समय से इस विषय में अनुभव करता आ रहा हूं। इच्छा ने प्रबल रूप तो तब धारण किया जब

गुरुकुल कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक तपस्वी ब्रह्मचारी विक्रमादित्य को गुरुकुल झज्जर में सर्प ने काटा। श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने उनकी चिकित्सा की जिससे वे सात आठ दिन जीवित रहे। डा० अनन्तानन्द जी भूतपूर्व प्रधानाचार्य (प्रिंसिपल) आयुर्वेद कालिज गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने एक वैद्य के परामर्श से सर्पविष से तैयार किया गया इन्जेकशन उनके प्राण बचाने के लिए हित भावना से लगाया किंतु वह ब्रह्मचारी जी के लिए घातक सिद्ध हुआ।

श्री ब्रह्मचारी विक्रमादित्य जी को पित्त प्रकृति के बिना फण के सर्प ने काटा था। उनसे घृत पीने के लिए बार-बार आग्रह किया गया किंतु उन्होंने घृत नाम मात्र ही पिया। वे घी पीने से न जाने क्यों संकोच वा घृणा करते थे। उनकी मृत्यु से मेरे ऊपर वज्रपात हुआ। उसके पीछे मैं अपने आयुर्वेद ग्रन्थों में सर्प विष की चिकित्सा विषय की खोज करने लगा। अनेक अनुभवी सर्पविष चिकित्सकों से मिला तथा अब भी मिलता रहता हूं। प्रतिवर्ष मेरे पास सर्पविष के दंशित अनेक रोगी आते हैं। ईश कृपा तथा ऋषियों की दया से मैं सेवा करता रहता हूं। कई रोगियों की भयंकर अवस्था में सेवा कर सफलता प्राप्त की। कितने ही सर्पविष चिकित्सक मेरे मित्र बने हैं जो सर्पविष के अच्छे सफल चिकित्सक हैं। श्री वैद्य कर्मवीर जी नरेला प्रतिवर्ष अनेक रोगियों की चिकित्सा करते हैं। हरयाणा प्रान्त में ही नहीं मैं भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में जाता रहता हूं। सर्वत्र सर्पविष के चिकित्सक वा वैद्यों के परस्पर दर्शन से आदान प्रदान होता रहता है।

मैं यह मानता हूं कि कितने ऐसे भयंकर विषधर नाग वा सर्प हैं जिनके विष की कोई चिकित्सा नहीं। ऐसा ही आयुर्वेद शास्त्र भी मानते हैं। किन्तु यह कहना वा लिखना कि आयुर्वेद शास्त्रों में सर्प विष चिकित्सा की औषध नहीं, यह भारी भूल है। जैसे सभी रोगों में असाध्य अवस्था होती है। ऐसे ही सर्पविष चिकित्सा के विषय में भी समझें। मैं कुछ घटनायें अन्य चिकित्सकों तथा अपने अनुभव की लिखता हूं।

एक दिन अकस्मात् ही मैं श्री वैद्य कर्मवीर जी के पास नरेला आश्रम में मिलने गया। उस दिन वैद्य जी कार्यवश कहीं बाहर गये हुये थे। मैं उनकी प्रतीक्षा में बैठा था कि एक जोतराम नामक कृषक सर्प के काटने से भयंकर पीड़ा से अत्यन्त दुःखी आर्तनाद करता (कराहता) हुआ वैद्य जी से चिकित्सा कराने आया। वह सर्प को पकड़कर इधर-उधर छोड़ दिया करता था, मारता नहीं

था। उसी स्वभाववश उसने एक विषैले सर्प को पकड़ने के लिए जो हल चलाते समय उसके बैलों के पैरों में आ गया था, हाथ डाला। हाथ सर्प के मुख पर ठीक नहीं पड़ा। सर्प ने क्रोध में आकर डस लिया। उसे सर्प एक बार पहले भी काट चुका था। वह कोई निर्विष सर्प था, उसे कोई कष्ट नहीं हुआ था। उसे पुराना अनुभव वा अभिमान था जिससे उसने यही सोचा कि "इसके काटने से मुझे क्या होता है, और कार्य में लग गया। यह सर्प विषैला था थोड़े ही समय में सर्पविष ने सारे शरीर पर प्रभाव जमा लिया। आश्रम से खेत कुछ दूर था, उसे वैद्य जी के स्थान पर पहुंचते देर लगनी ही थी। सर्प पित्त प्रकृति का था। उसके विष के कारण रक्त शिरायें फट गई थी दंशित स्थान से भी रुधिर वेग से निकल रहा था। मुख से भी रक्त बह रहा था। उसके हाथ पर पर्याप्त शोथ (सूजन) आ गया था उसे असह्य पीड़ा थी और सर्पविष के कारण वेग से ज्वर चढ़ गया।

मैं शीघ्र ही गुरुकुल झज्जर लौटना चाहता था किन्तु वैद्य जी वहां थे नहीं अतः उस सेवा का अवसर मुझे मिल गया। मुझे देखकर उसकी आशा बंध गई। उसकी चिकित्सा आरम्भ की औषध लगाई तथा गोघृत के साथ खिलाई। वह मुख से पाव-पाव भर रक्त (लहू) वमन द्वारा फैंक रहा था। आरम्भ में एक-दो बार घृत तथा औषध को भी वमन द्वारा बाहर फैंक दिया। रोगी को धैर्य्य अथवा ढाढ़स बंधवाया। औषध उपचार करता रहा। निरन्तर कई दिन की सेवा से मैं उसकी चिकित्सा करने में सफल हुआ।

उसकी चिकित्सा करने में अनेक कठिनाइयां आईं। ज्वर बड़े वेग से था अतः घृत जो उस समय औषध के साथ चिकित्सा की दृष्टि से देना अत्यन्त आवश्यक था, हानिकारक सिद्ध हो सकता था। शरीर से पर्याप्त मात्रा में रक्त निकल जाने से हृदय की गति निर्बल तथा मन्द हो गई थी उसके शरीर में अनेक वर्षों से वात (वायु) रोग चला आ रहा था वह भी रक्त की न्यूनता के कारण रोगी के एक पैर में प्रकट होकर उसे भयंकर पीड़ा कर रहा था। भयंकर सूजन असह्य पीड़ा और पर्याप्त मात्रा में शरीर से रक्त निकल जाना, ये सब मिलकर रोगी के साहस को तोड़ रहे थे। सहानुभूति के लिए आने-जाने वाले इष्टमित्र वा सम्बन्धी उसकी भयंकर अवस्था और असह्य पीड़ा को देखकर उलटी-सीधी बातें कहकर उसका साहस तोड़ रहे थे। सबके मुख से यही निकलता था—बचना असम्भव वा अतिकठिन है। किन्तु ईश्वर की कृपा, ऋषियों की दया और

आयुर्वेद शास्त्र की सच्ची चिकित्सा पद्धति के कारण उसके प्राण बच गये। रोगी ईशकृपा से भला चंगा होकर घर चला गया। जब कभी मिलता है उसकी आंखें और हृदय कृतज्ञता वा प्रेम से भर जाते हैं। वह श्रद्धावश नतमस्तक हो जाता है।

एक बार इसी प्रकार मैं गीझी ग्राम में कार्यवश गया। वहां एक पटवारी को सर्प ने काट खाया था। सर्पविष सारे शरीर में फैल गया था। ज्वर रहता था, रक्त शिरायें फटकर पर्याप्त रक्त भी शरीर से निकल गया था। शरीर के अनेक स्थानों पर विष के कारण नीलिमा लिये लाल धब्बे पड़े हुए थे। वह घबराया हुआ था। उसकी चिकित्सा एक सर्पवैद्य करता रहा था वह ही मुझे उसके पास ले गया था और मेरी सम्मति चाहता था। मेरी सम्मति के अनुसार चिकित्सा की गई। वह रोगी कुछ दिनों में भला चंगा हो गया।

इसी प्रकार कितने ही रोगियों की चिकित्सा की जबकि रोगी तथा उसके सम्बन्धी घबराये हुए थे। ईशकृपा से उनकी सेवा में सफलता मिली। मैंने क्या औषध-उपचार किया यह सर्प विष की चिकित्सा लिखते समय खोलकर लिखूंगा।

एक घटना उस समय की लिखता हूं, जब पाकिस्तान नहीं बना था। एक इसी विषय की सच्ची घटना गुरुघण्टाल समाचार पत्र में निकली थी। जमालदीन नाम का एक व्यक्ति गुजरां वाले का निवासी लाहौर में मरोजदीन जेलदार के ताङ्गा हांकने की नौकरी करता था। वह एक दिन लाहौर से तीन मील दूर खेत में चारा काटने गया। उसे एक सर्पिणी (सांपन) ने जिसके शरीर पर नीली, पीली, हरी, सुनहरी और श्वेत (सफेद) धारियां थीं। जिसकी लम्बाई एक हाथ के लगभग थी। पैर पर गट्टे (टखने) के निकट काट खाया। उसने उसे बड़ी कठिनाई से उतार कर फैंका। वह भाग गई और छिप गई। वह घबरा गया, विष के कारण उसके पेट तथा हृदय में भयंकर पीड़ा होने लगी। उसके पक्वाशय तथा कलेजे को विष काट-काटकर खाने लगा। वह खेतों में पागलों के समान दौड़ने लगा, फिर चेतना रहित (बेहोश) होकर गिर पड़ा, कई घण्टे इसी अवस्था में पड़ा रहा। मध्य में उसे कभी होश आ जाता था, उस समय वह पास पड़े हुये जल को उठाकर मुख और सिर पर डाल देता था। सायंकाल पता चलने पर जेलदार के अन्य नौकर उसे उठाकर वहां से लाहौर ले गये। वहां नूरउद्दीन हकीम से चिकित्सा करायी। एक मास के पीछे वह चलने-फिरने तथा कार्य करने लगा। हकीम जी नें उसे बता दिया कि सर्पिणी कामातुर थी, उसकी गन्ध तुम्हारे अन्दर

रम गयी है, अतः ६ मास वा वर्ष के पीछे सर्प तुम्हें अवश्य डसा करेगा। उसने घबराकर इससे बचने का उपाय पूछा। हकीम जी ने यही उत्तर दिया—मृत्यु को छोड़कर कोई चिकित्सा नहीं। इस जीवन में सांप तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ेंगे।

उस समय उसकी आयु २५ वर्ष की थी। वह निराश वा हताश हो गया, किन्तु करता क्या? गृहस्थ निर्धन था। निर्वाह करना था, अपने कार्य में लग गया। वह स्वस्थ होकर ११ मास भली-भांति कार्य करता रहा। १२ वें मास के आरम्भ में अपने शरीर से उसे खरबूजे के फलों के समान गन्ध आने लगी। सुगन्ध दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी, १२ वें मास के १५ वें दिन यह गन्ध अत्यन्त तीव्र हो गई, उसका शरीर टूटने लगा, उसकी यह इच्छा प्रबल होती गई कि सर्प आये और उसे काटे। वह सर्प की प्रतीक्षा करने लगा। उसे एक प्रकार का मद (नशा) सा चढ़ गया। थोड़ी देर में सर्प आता दिखाई दिया, उसने अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए अपना अंग आगे कर दिया। सांप ने काट खाया, सांप और वह व्यक्ति चेतना रहित (बेहोश) हो गये। होश आने पर सर्प चला गया और वह दस दिन बिना कोई औषध उपचार किये घर पर पड़ा रहा। निर्बलता दूर होने तथा शक्ति आने पर उसने यह घटना पीरबख्श मदारी को बाजार बाग में सुनाई तथा इस कष्ट से बचने का उपाय पूछा। उसने बताया कि जब सांप काटने आये तो साहस करके उसकी ग्रीवा मुख में लेकर चबाले। इससे सर्पिणी की बन्ध तुम्हारे अन्दर से दूर हो जायेगी तथा तुम इस कष्ट से बच जाओगे। वह लाहौर आने पर काम में लग गया। छः मास पश्चात् वही गंध वेग से आने लगी, वह सांप के आने का समय समझ बैठ गया। सर्प शीघ्र ही आ गया, उसने बड़े वेग से काटा, उसने पीर की आज्ञानुसार पीड़ा का ध्यान न करके साहस से सर्प के सिर को वस्त्र में लपेट मुख में रख दान्तों से चबा गया। उसका रस, रक्त और विष भी कण्ठ के नीचे उतार गया। किन्तु इसका उलटा ही परिणाम हुआ, उसे दूसरे दिन प्रातः ही तीव्र गन्ध आने लगी, कुछ समय पीछे सांप ने उसे आकर काट लिया इसके पश्चात् सांप उसे प्रतिदिन आकर काटने लगा। पहले तो वह अपना एक पांव सर्प के आगे रख दिया करता था, किन्तु जब उसे चलने-फिरने में कष्ट होने लगा तब उसने अपनी भुजाओं, हाथों पर कटवाना आरम्भ कर दिया। वह उस पीर के पास गया और कहा कि मुझे पहले तो एक वर्ष तथा छः मास में सर्प काटता था। किन्तु अब तो प्रतिदिन ही काटने लगा। "तेरा सत्यानाश हो मुझे

और अधिक कष्ट में फंसा दिया, अच्छी औषध बताई!" पीर ने कहा—"मेरी सुनी हुई औषध थी, अनुभूत नहीं। मेरा इसमें क्या दोष ?" वह रोगी हताश होकर योगियों तथा संन्यासियों की खोज में फिरने लगा। हरद्वार कुम्भ के मेले पर पर्वतों पर घूमा, किसी ने कुछ बताया, किसी ने कुछ। जैसे "मोर की पंख को हुक्के में तम्बाकू के स्थान पर धर कर पीओ" उसने ऐसा ही किया। किसी ने रीठे रगड़ कर पीने बताये, वे भी पीये। किसी ने नेवले जो सांप के शत्रु हैं उनको पकाकर उनका रस पीना बताया। जिसने भी जो बताया उसने वह ही किया, किन्तु रोग बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की" वाली लोकोक्ति सिद्ध होती चली गई। प्रथम बार सांप काटने के छः वर्ष पीछे उसके घर लड़का उत्पन्न हुआ था। उसकी स्त्री जब उसे सर्प काटकर जाता था तो वह सर्प को मार डालती थी। इस प्रकार उसकी स्त्री तथा स्वयं उसने दो सहस्र (हजार) सांप मार डाले।

बीस-पच्चीस उसने कच्चे खाये, तीस-चालीस पकाकर खाये। लड़का जब चार वर्ष का हो गया तो एक दिन दोपहर के समय एक सर्प ने उसकी स्त्री के दायें हाथ की अंगुली पर काट खाया। इसके पश्चात् उसकी स्त्री को आठवें दिन सांप आकर काटने लगा। उसे प्रतिदिन नियम से काटता ही था। जिस दिन उसकी स्त्री को काटता उस दिन दो सर्प आते थे। एक उसे तथा दूसरा उसकी स्त्री को काटता था। उसकी स्त्री के शरीर से भी आठवें दिन उसी प्रकार की गन्ध आती थी। सांप के काटने से कामी, विषय के समान उसे विषयानन्द आता था। अतः वे "कामातुराणां न भयं न लज्जा" के अनुसार कामासक्त हो सर्प से कटवाते थे।

इसी प्रकार एक दिन वह अपने पुत्र को गोद में लिए बैठा था। बालक की टांग उसकी टांग पर थी। सर्प उसे काटने आया, सर्प का दान्त उसे काटते-काटते बालक की टांग को छू गया। इसके तीन मास पश्चात् सर्प ने आकर उसके लड़के को डस लिया। उसे प्रतिदिन, स्त्री को आठवें दिन, बालक को तीसरे मास काटने लगा। उसके घर में एक लड़की उसके भाई की रहती थी वह शेष थी। एक दिन उसकी पत्नी को सर्प काटने के लिए चारपाई पर आ गया। लड़की डरकर नीचे कूद गई। उसका पग सर्प पर पड़ गया। वह चलता-चलता उसको काट गया।

एक दिन उन्हें किसी ने यह बताया कि सांपों को उबालकर इनका रस पीया जाये तो इस विपदा से पिण्ड छूट सकता है। उसने पन्द्रह दिन तक सांप एक घड़े

में इकठ्टे किये । इसके पश्चात् सिर और पूंछें काट-काटकर गंडीरियों के समान छोटे-छोटे भाग कर डाले । रात को पकाकर अंधेरे में मांस के समान खा गया। इसका परिणाम यह हुआ कि अगले दिन से ही चार-पांच सांप आने लग गये और चारों को पृथक्-२ काटकर चले जाते। उनकी दुर्गति हो गई। सारे दिन चारपाइयों पर ही गुजरने लगे। उचित भोजन न मिलने तथा प्रतिदिन सांपों के काटने से अत्यन्त निर्बल तथा दीन-हीन अवस्था हो गई ।

वे किसी भी स्थान पर होते घर के अन्दर बाहर वा छत पर सांप सब स्थानों पर पहुंच जाते थे । एक दिन उसे जब गन्ध आने लगी वह समझ गया कि सर्प के आने का समय है । वह यह समझ कर छत से लटक गया, यह देखने के लिए कि सर्प आज कहां से आयेगा । दस मिनट के पीछे सर्प ने छत से निकल कर काट खाया । वह एक दिन प्रातः से सायं तक तांगे पर ही चढ़ा रहा भूमि पर पग भी नहीं रखा । तांगे पर ही न जाने कहां से सांप आ गया और उसे काट खाया ।

इस प्रकार नवम्बर १९२९ में सांपों के चिकित्सक (मीरासी) नंगलदत्तसिंह में आकर ठहरे । उसने अपना सारा दुःख उनके चरणों में गिरकर रोया ओर दया की भीख मांगी । उनके बाप और बाबा सेवादास और बाबा मरनदास थे, उनको दुःख भरी कथा सुनकर दया आ गयी। उन्होंने बकरियों का तीन सेर दूध लाने को कहा । वह जैसे-तैसे कर बकरियों का दूध ले गया। उन्होंने दो-तीन टोकरियां गोबर की मंगाई, गोबर को पानी में घोल दिया । कुछ समय में गोबर नीचे बैठ गया ।

जल ऊपर आ गया । जल को निथार कर नीचे डाल दिया दूध में शुद्ध गोबर डालकर घोल दिया। एक हरे रंग की औषध पताशों में डालकर सबको खिलाई पश्चात् एक बड़ा गड्ढा खुदवाकर उन चारों को उसमें बिठला दिया । गड्ढे से बाहर केवल उनका सिर ही था। छः बजे सायं उन्हें गड्ढे में बिठाया था। रात भर उस गड्ढे में ही रखा। उन चारों पर गोबर मिला हुआ दूध रात भर डालते रहें। ऐसा करने से उनके मुख और नाक से हरे रंग का विष निकलने लगा। जो गोबर मिला हुआ दूध उनके सिरपर डाला गया । वह उनके शरीर की (उष्णता) से शुष्क होता (सूखता) गया । फिर प्रातः रजाई ओढ़ाकर आग के आगे बिठला दिये। दो दिन उन्हें वहां रख कर औषध खिलाई, जिस दिन उन्हें गड्ढे में बिठाया वह सांपों का अन्तिम दिन था । उसके

पश्चात् काटना तो क्या सांपों के दर्शन भी नहीं हुये। इस प्रकार २५ वर्ष की की भयंकर विपदा से उन्हें छुटकारा मिला।

पाठकगण ! इस घटना से समझ गये होंगे कि आयुर्वेद शास्त्र में कैसी-कैसी विचित्र सर्प औषध उपलब्ध हैं। यह घटना पं० ठाकुरदत्त शर्मा अमृत धारा ने अपने पुस्तक में भी लिखी है।

भारतवर्ष में एक सपेरा नाम की जाति है। जिसमें [लाखों नहीं तो सहस्रों की संख्या में लोग अवश्य पाये जाते हैं। जिनका कार्य सांपों का नाच दिखाकर अपना निर्वाह करना है। वे अनेक प्रकार के सर्पों को पकड़कर अपने साथ रखते हैं। ग्रामों और नगरों में जाकर लोगों को दिखा-दिखाकर अन्न पैसा आदि मांगते हैं। सर्प विष की चिकित्सा में वे सिद्ध हस्त होते हैं। अनेक प्रकार के भयंकर विषैले सर्प उनके पास पकड़े हुए होते हैं। सर्प पकड़ते समय अनेक बार उनको काटते हैं। वे अपनी चिकित्सा भी करते हैं। लगभग दो मास हुये, उस समय की एक इसी प्रकार की घटना है।

४—कासनी ग्राम तहसील झज्जर जिला रोहतक में कुछ सपेरे आये। वहां ग्राम से कुछ दूर एक स्थान पर एक भयंकर विषैली काली नागों का एक जोड़ा रहता था। ग्राम के लोग उधर जाते हुये भी डरते थे। सपेरों को देखकर गांव के लोगों ने उनको सांपों का स्थान बता दिया। वे सपेरे उन सर्पों को पकड़ने के लिये उसी स्थान पर पहुंच गये। एक सपेरे ने साहस से आगे बढ़कर झाड़ियों में से उस भयंकर नाग को बड़ी सावधानी से पकड़ लिया। ज्योंही उसने उसको पकड़ा तो क्या देखते हैं, पास के खेत में से ही जोड़े वाला सांप क्रोध में आया हुआ भागा आ रहा है। दूसरे सपेरे ने उसे पकड़ने के लिये बड़ी सावधानी से सांप के मुख पर हाथ डाला। किन्तु सांप भी पहले से ही सावधान था। वह उसकी पकड़ में नहीं आया तथा सपेरे को काट खाया। सपेरे ने दंश स्थान पर उसी समय औषध लगा दी। पुनः द्वितीय बार उसे पकड़ने का यत्न करने लगा किन्तु सांप ने फिर दूसरी बार भी उसे काट खाया। सपेरे ने भी काटे हुये स्थान पर फिर औषध लगा ली और तीसरी बार उसके पकड़ने में सफल हो गया। उन दोनों सांपों को अपनी पिटारियों में डालकर दोनों सपेरे चलते बने।

सपेरे सर्प विष चिकित्सा के ज्ञान वा अपने अनुभव के कारण कितने निर्भय

होते हैं। इस विषय की स्वयं देखी हुई एक घटना सूफी अम्बा प्रसाद ने इस प्रकार लिखी है। सन् १८७१ में बंगाल में बहुत वेग से बाढ़ आ गई। चहुँ दिशाओं में जल ही जल भरा हुआ था। सूफी जी चितवल नाम के ग्राम में जाना चाहते थे। नौका के बिना वहां किसी प्रकार जा नहीं सकते थे। उन्होंने पुलिस आफीसर के द्वारा नौका ली और वे उसमें बैठ गये। नौका चलने ही वाली थी कि एक व्यक्ति ने आकर कहा कि यहां पर बहुत ही सपेरे आकर ठहरे हैं। जिन्होंने बहुत सांप पकड़ रखे हैं। सूफी जी ने उनको बुलाया और उनके सांप देखे। सपेरों ने कहा कि ये क्या सांप हैं। साथ चलें तो आप को बड़े-बड़े भयंकर विषैले सांप दिखा सकते हैं। यह सुनकर उनके मन में भी सांप देखने की इच्छा उत्पन्न हुई, वे पुलिस इन्सपेक्टर सहित तीन सपेरों को साथ लेकर नौका द्वारा चल पड़े। पुलिस आफीसर ने अपनी दुनाली बन्दूक भी साथ ले ली। जल का बहाव अनुकूल था। अतः नौका तीव्र गति से चली, वे शीघ्र ही निश्चित स्थान के निकट पहुंच गये। आरम्भ में एक वृक्ष आया जिस पर कुछ सांप दिखाई दिये। सपेरों ने कहा यहां क्या है आगे चलें। ज्योंहि हम आगे गये तो दो-चार और वृक्ष दिखाई दिये। एक छुहारे के वृक्ष पर नीचे से लेकर ऊपर तक सांप ही सांप लिपटे हुये थे। जिनमें एक काले रंग का कुड़ियाला बहुत लम्बा सांप था। सांपों की इतनी अधिक संख्या थी कि सांप के ऊपर सांप लिपट रहा था। इस प्रकार वह वृक्ष जड़ से चोटी तक सांपों के कारण कालें रंग का प्रतीत होता था। पास ही कुछ खजूर के वृक्ष भी थे जिनके ऊपर बहुत संख्या में सांप लिपटे हुये थे। वे तीनों सपेरे उनको पकड़ने के लिये खड़े हो गये। नाविक जो आगे बैठा हुआ नौका चला रहा था सपेरे ने उसे पीछे कर दिया और स्वयं चप्पू चलाने लगा। वह उस नौका को उस वृक्ष के पास ले गया और उसने वृक्ष की एक शाखा पकड़ ली। शाखा के पकड़ने तथा हिलने से सैंकड़ों सांप जल में गिर पड़े। सपेरे ने शाखा को इतने वेग से खेंचा कि नौका का अगला भाग वृक्ष के पत्तों के झुण्ड के नीचे चला गया। उस समय बड़ा भयंकर दृश्य देखने में आया। सहस्रों सांपों ने वृक्ष पर से जल में कूदना आरम्भ किया। कुछ ही क्षणों में उनकी नौका के चारों ओर सांप ही सांप फिरने लगे। इन्स्पेक्टर साहिब भय और क्रोध से चिल्लाने लगे और सपेरों को गाली देते हुये धमकाकर कहने लगे कि नौका छोड़ दो नहीं तो सारी नौका में सांप ही सांप भर जायेंगे। किन्तु सपेरे अपने सर्प पकड़ने के कार्य में इतने व्यस्त थे कि उन्होंने इन्सपेक्टर की बात न सुनी। उनको

किञ्चित् मात्र भी भय नहीं था वे बड़े से बड़ा अच्छा सांप छांट कर पकड़ते थे। जो सांप उनको बड़े दिनों की खोज के पीछे मिलते थे, आज वे सहज में ही मिल रहे थे। उस वृक्ष की प्रत्येक शाखा पर सैकड़ों विषैले सांप लटक रहे थे। वे शाखायें उनकी नौका के ऊपर ही थीं। सूफी जी और उनके साथी घबराये हुए थे। वे पानी में बांस मार-मार कर उन सांपों को अपनी नौका से दूर करने का यत्न कर रहे थे। उन्हें यह डर था कि कोई सांप उनकी नौका में न चढ़ आये। किंतु सपेरों को कोई चिन्ता नहीं थी। सर्प उनके माथे और कभी शिर को छू लेते थे। कोई सांप उनके कान से, कोई हाथ से, कोई सारे शरीर से छू जाते थे। किन्तु सपेरों को किञ्चिन्मात्र भी भय नहीं था। प्रत्येक सांप बिना दांत टूटा हुआ था और कोई तो इतना विषैला था कि यदि काट लेता तो पांच मिनट में ही बलवान् से बलवान् व्यक्ति को समाप्त कर देता।

एक बार तो एक सांप ने सपेरे के ललाट को चाट लिया। उसने अपना सिर थोड़ा सा नीचा कर लिया और सबको धैर्य देकर अपने काम में लग गया। सपेरों के इस व्यवहार और निर्भयता को देख कर सूफी जी तथा उनके साथी भी कुछ निर्भय से हो गये तथा सपेरों के कार्य को धैर्य और आनन्द से देखने लगे। प्रतिक्षण सहस्रों सांप पानी में गिरते थे। उनके सिरों से चारों ओर का पानी काला दिखाई देता था। फिर वहां से नौका को एक वट वृक्ष की ओर ले गये, यह वृक्ष सांपों का तम्बू (शामियाना) प्रतीत होता था। उस पर अनेक प्रकार के सर्प विद्यमान थे। किसी का फन सफेद, किसी का पीला, और किसी का लाल था। सहस्रों प्रकार के बड़े सुन्दर-सुन्दर सर्प थे। एक मनोहर दृश्य था। इतने में ही एक सपेरा बोला—लो एक बड़ा सांप, यह कहकर नौका को छोड़ वृक्ष से जा लिपटा और ऊपर को चढ़ने लगा। इस वृक्ष का प्रत्येक स्थान सांपों से ढका हुआ था और सांप भी कैसे? जिनके काटने से मनुष्य की तुरन्त मृत्यु हो जाये। उसे चिल्लाकर कहा गया कि तुरन्त नीचे उतर आओ, किन्तु यह कहता हुआ कि बड़ा भारी सांप है ऊपर ही चढ़ता गया। उसे उस सांप के पकड़ने का लोभ तंग कर रहा था। दोनों सपेरे जो नाव में थे यह कह रहे थे कि यह इसके हाथ न आयेगा। वे सब उस वीर सपेरे की ओर देख रहे थे। वह ज्यों-ज्यों ऊपर जाता था सांपों में खलबली मच जाती थी, कुछ सर्प पानी में गिर जाते थे कुछ उसके आगे-आगे चलते जाते थे। उनके चलने से जो सांप सो रहे थे वे जागते थे। कुछ यह देखकर

कि आगे मार्ग नहीं है उसकी ओर लौट आते थे। वह वृक्ष पर चारों हाथ पैरों से चल रहा था। कभी सांपों को हट जाने का अवसर देने को ठहर जाता जब वे हट जाते तो कुछ आगे बढ़ता और फिर रुक जाता तथा अपनी ओर आने वाले सांपों को हाथों से हटा देता था। इस कार्य के लिये अपने पैरों का भी प्रयोग करता था न कोई फन उठाता था न कोई फुंफकारता था, न ही काटता था।

शनैः-शनैः वह उस सांप के पास पहुंचा गया। सांप भागना चाहता था कि उसने दोनों हाथों से उसकी पूंछ पकड़कर पूरे वेग से खींचना आरम्भ किया। सांप भी अपनी पास वाली एक छोटी सी शाखा पर लिपट गया। इस खेंचातानी में उसका पैर शाखा से फिसल गया। वह सतरह फीट ऊंचे से बड़े वेग से पानी में गिर पड़ा, गिरते ही पानी गहरा था उसमें डूब गया। सूफी जी के साथियों ने समझा कि मर गया होगा किन्तु थोड़ी ही देर के बाद उसने सिर निकाला और यह कहता हुआ निकला कि मैं पकड़ लाया हूं, देखो यह है। उसे अपने गिरने का किञ्चित् मात्र भी डर नहीं था। उसने अपना वह हाथ निकाला जिसमें सांप की पूंछ थी, दूसरे सपेरे ने जो नाव में था, वह पूंछ पकड़ ली और उसे खींचकर पात्र में बन्द कर दिया। यह सांप इतना बड़ा था कि इसे साधारण अवस्था में तीनों सपेरे नहीं पकड़ सकते थे। वह सांप गिरने से डर गया और घबरा गया तथा पात्र में बन्द करते समय उसने सिर तक न हिलाया।

इस घटना से पाठक लोग समझ गये होंगे कि सपेरा जाति के लोग किस प्रकार सांप पकड़ने में मृत्यु के साथ खिलवाड़ करते हैं। यदि उनके पास सर्प विष की कोई औषध न हो तो वे ऐसा साहस नहीं कर सकते।

ऐसी घटनायें प्रायः इन सपेरों के साथ प्रतिदिन होती ही रहती हैं। ये सपेरे सर्प विष-चिकित्सा के अच्छे सिद्धहस्त चिकित्सक होते हैं। इसी प्रकार की एक घटना जिला बिजनौर के गङ्गोरा ग्राम की है—

५—एक गडरिये को सांप ने काट खाया, अनेक प्रकार की चिकित्सायें कीं, परन्तु कोई सफलता नहीं मिली। उसके घर वालों ने उसे मृत समझकर उसके शव (लाश) को गंगा नदी में बहा दिया। जब मृत शरीर बहा जा रहा था, उसे किसी सपेरे ने देख लिया जो उस नदी के किनारे पर स्नान कर रहा था। उसने अपने अनुभव के आधार पर यह जान लिया कि यह सर्प का काटा हुआ है। वह उसे बाहर निकाल लाया और उसकी चिकित्सा आरम्भ की। कुछ समय पीछे

उस मृत देह में जीवन के चिह्न दिखाई देने लगे । वह सपेरे की चिकित्सा से ठीक (जीवित) हो गया । उसने उसे भी अपने साथ रखकर सपेरा बना लिया । कुछ वर्ष पश्चात् चन्दपुरा ग्राम में जो गङ्गोरा ग्राम से दो-तीन मील के अन्तर पर है वे दोनों सपेरे आये । वहां पर उसके सम्बन्धी और कुटुम्ब परिवार वालों ने उस व्यक्ति को भली-भांति पहचान लिया और उसने भी इष्ट मित्रों तथा सम्बन्धियों को भली भांति पहचान कर उनके नाम स्थान आदि सब बता दिये । यह घटना भी एक बार समाचार पत्र में प्रकाशित हुई थी ।

उन्नीस अक्तूवर सन् १९५३ ई० के उर्दू दैनिक 'प्रताप' में मैंने स्वयं पढ़ा कि एक भयंकर सर्प ने एक व्यक्ति को काट खाया उसकी चिकित्सा डाक्टरों से कराई गई, किन्तु उसे कोई लाभ नहीं हुआ । अन्त में डाक्टरों ने यही कह दिया कि इसकी चिकित्सा नहीं हो सकती यह अवश्य मरेगा । उसके सगे सम्बन्धी विवश होकर उसको डाक्टर के यहां से उठा लाये । जब वे मार्ग में जा रहे थे, अकस्मात् उन्हें एक सर्प विष चिकित्सक (वैद्य) मिल गया, उसने उसकी चिकित्सा की, जिसे वे मुर्दा समझ रहे थे । वह उसकी चिकित्सा से अच्छा हो गया ।

ब्रह्मचारी हरिशरण और सर्प

सर्प पकड़ने वाले प्रायः निर्भीक वा वीर होते हैं । ऐसे ही हमारे एक साथी ब्रह्मचारी हरिशरण बाइबिल आचार्य थे । छोटे मोटे सांपों का पकड़ना तो उनके बायें हाथ का खेल था । भयंकर काली नागों को पकड़ते हुए भी वे देर नहीं लगाते थे । एक दिन नरेला, दिल्ली में जहां पहले हमारा "आर्य विद्यार्थी आश्रम" था और पीछे वैद्य कर्मवीर जी का वहां निवास स्थान बन गया वहां पहले अच्छा बाग था । बाग के दोनो ओर पानी के कच्चे तालाब व (जोहड़) थे । वहां प्रायः सांप पर्याप्त संख्या में रहते थे । एक दिन एक काला भयंकर सर्प निकला उसको ब्रह्मचारी हरिशरण जी ने देख लिया । वे उसे पकड़ने के लिए भागे । सांप बिल में घुस गया । वे बाल्टी से बिल में पानी डाल-डालकर और कस्सी से खोद-खोदकर सांप को निकालने लगे । वह अन्दर ही घुसता चला गया । लेकिन ब्रह्मचारी जी भी एक बजे तक इसी कार्य में रत रहे । खाना-पीना भी सब भूल गये ।

अन्त में वह सांप बाहर निकला और निकल कर भागा । ब्रह्मचारी जी भी लाठी लेकर पीछे-२ भागे, काला सांप खजूर के ऊपर चढ़ गया ब्रह्मचारी जी भी

लाठी लेकर खजूर पर चढ़ गये। बहुत यत्न करने भी वह सांप खजूर से नहीं उतरा। ब्रह्मचारी जी ने खजूर के सूखे फाँकड़ों में आग लगा दी। आग की गर्मी से दु:खी होकर वह सांप जोहड़ के पानी में कूद गया। उसके पीछे-पीछे ब्रह्मचारी जी भी पानी में कूद गये। सर्प बहुत तेजी से तैरकर तालाब को पार करके बाहर निकल गया ब्रह्मचारी जी कौन से कम थे ! तेजी से तैरकर उसे बाहर जाकर घेर लिया। जब उसे अपनी पकड़ से बाहर देखा तब लाठी से मारकर उठा लाये। तब कहीं जाकर उनको चैन पड़ा। इसी प्रकार गुरुकुल झज्जर में एक काले सांप को पकड़ने लगे वह भी बिल में घुस गया, उसे खोदकर निकाल लिया और पकड़ लिया। पकड़ने में कुछ असावधानी हुई। सांप ने हाथ के अंगूठे पर काट लिया। ब्रह्मचारी जी अच्छी तरह जानते थे कि सर्प बड़ा भयंकर है। अत: तुरन्त ही बहुत फुर्ती से तेज चाकू से अंगूठे का सर्पदंशित स्थान काल डाला। वह अंगूठा बहुत दिनों में सञ्जीवनी तैल से अच्छा हुआ। हम उनको बहुत बार कहा करते थे कि आप सांप को मत पकड़ा करो। कभी विषैले सांप के काटने से ही मृत्यु हो जायेगी यह किसी की कब सुनते थे। सर्पों को पकड़ना, उनके साथ खेल करना, उनको मिट्टी की हांडियों में बन्द रखना, यह उनका प्रतिदिन का कार्य था।

ये सिमडेगा नाम के स्थान पर बिहार में रहते थे। आदिवासी जो ईसाई बन गये थे उनकी शुद्धि करके पुन: आर्य (हिन्दू) बनाते रहते थे। सर्पदंश की चिकित्सा में वे बहुत निपुण थे। उनको अपनी चिकित्सा पर अहंकार हो गया था। एक दिन एक भयंकर विषैले सर्प को पकड़कर अपने गले में डाल लिया और लोगों में व्याख्यान देने लगे। मौका पाकर सांप नें काट लिया, उस अवस्था में भी व्याख्यान ही देते रहे। उस सांप ने पुन: द्वितीय बार भी काट लिया। अपने कार्य से निवृत्त होकर अपने निवासस्थान पर गये, वहां औषध ली औषध वमन (कै) में निकल गई। सब कुछ यत्न करने पर भी मृत्यु आ गई और यह बात सत्य सिद्ध हो गई कि सांप को पकड़ने वाला सांप के काटने से ही मरता है।

अगस्त १९६६ में जिस समय उनकी मृत्यु हुई, मैं जालन्धर में था। मुझे तार द्वारा सूचना मिली, मुझे बहुत दु:ख हुआ। मैं उस ग़म को कम करने के लिये श्रीनगर [कश्मीर] की ओर चला गया। मुझे इतना वीर और साहसी साथी दूसरा अभी तक नहीं मिल पाया।

एक वीर ब्रह्मचारी व्यर्थ में ही अमूल्य जीवन को बली पर चढ़ा गया इसलिये

सांप को पकड़ना मृत्यु को बुलाना है और अपने जीवन से खिलवाड़ करना है। अतः इससे सर्वथा बचना चाहिए।

प्रतिवर्ष एक लाख से अधिक मृत्यु तो सांप के काटने से केवल भारत वर्ष में ही हो जाती हैं। लाखों मनुष्य तथा अन्य प्राणियों को जो कष्ट सर्पादि विषैले जन्तुओं के काटने से होता है, उसका अनुभव वे ही करते हैं जिन पर यह आपत्ति पड़ती है। अथवा इसका भली भांति ज्ञान सर्पविष चिकित्सकों को ही है। सर्प सभी स्थानों पर पाये जाते हैं और सर्वत्र सभी प्राणियों को सदा इनका भय बना रहता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को इनके विष की चिकित्सा का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसी आपत्ति पड़ने पर इस पुस्तक को पढ़ने वाले पाठक दुःखी प्राणियों की सेवा कर सकेंगे। और अधिक नहीं तो न्यून से न्यून जब तक कोई सफल चिकित्सक रोगी तक न पहुंच जाये तब तक उसकी प्रारम्भिक चिकित्सा द्वारा प्राण रक्षा की जा सकेगी। इतना लाभ तो अवश्य उठा सकेंगे। इसी आशा से अनेक सफल चिकित्सकों तथा अपने अनुभव के आधार पर तथा इस विषय में जो हमारे आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में हमारे पूज्य ऋषि मुनियों ने अपनी तपस्या द्वारा अनुभव करके जो ज्ञान संसार के कल्याणार्थ हम तक पहुंचाया है, वह सर्व-साधारण के लाभ के लिए विस्तार से इस पुस्तक में वर्णन कर रहा हूं।

सर्पविष की चिकित्सा से पूर्व सर्पों के कितने भेद वा जातियां हैं। उनमें कौन से विषैले और कौन से निर्विष होते हैं इत्यादि विषयों को खोलकर लिखता हूं। वैसे तो सर्पों के बहुत भेद हैं। किन्तु महर्षि धन्वन्तरि जी सर्पों के दो भेद मानते हैं। वे सुश्रुत में इस प्रकार से लिखते हैं—

तत्र दृष्टिनिश्वासदिव्याः सर्पा भौमास्तु दंष्ट्रा विषाः"

१—प्रथम दिव्य सर्प जिनकी दृष्टि और निश्वास मात्र से विष चढ़ता है और प्राणी के प्राणपखेरु उड़ जाते हैं। इस विषय में महर्षि जी अन्यत्र लिखते हैं।

असंख्या वासुकिश्रेष्ठा विख्यातास्तक्षकादयः ।
महीधराश्च नागेन्द्रा हुताग्निसमतेजसः ॥
ये चाप्यजस्रं गर्जन्ति वर्षन्ति च तपन्ति च ।
ससागर गिरिद्वीपा यैरियं धार्यते मही ॥

क्रुद्धा निश्वासदृष्टिभ्यां ये हन्युरखिलं जगत् ।
नमस्तेभ्योऽस्ति नो तेषां कार्यं किञ्चिच्चिकित्सया ॥

अर्थ—वासुकि जिन में श्रेष्ठ है ऐसे तक्षकादि साँप असंख्य हैं। ये नागेन्द्र, होमाग्नि—समतेजस और पृथिवी को धारण करने वाले महीधर आदि हैं। ये निरन्तर गर्जते हैं, बरसते हैं, तपते हैं। समुद्र, पर्वत, द्वीप सहित पृथ्वी को इन्होंने धारण किया हुआ है। जो ये क्रुद्ध हो जावें तो इनके निश्वास और दृष्टि मात्र से सम्पूर्ण जगत् नष्ट हो सकता है। इनके लिए नमस्कार है, उनका चिकित्सा के विषय से कोई सम्बन्ध नहीं अर्थात् उनके विष की कोई भी चिकित्सा नहीं हो सकती।

ऐसा दिव्य सर्पों के विषय में लिखा है। यह ऋषियों का अलंकार सा प्रतीत होता है अथवा पीछे का प्रक्षेप वा मिलावट है। इन दिव्य सर्पों का दर्शन वा श्रवण तो इस संसार में हो नहीं सकता। न आज तक किसी विद्वान् ने इस विषय पर प्रकाश ही डाला है। इन तक्षकादि सर्पों की गाथायें पुराणों में अवश्य आती हैं। न जाने इस युग में वे लुप्त ही हो गये हैं अथवा ये कल्पित हैं। महाभारत में यह घटना अवश्य लिखी है कि परीक्षित को तक्षक सर्प ने डसा था। यह उस काल का सबसे अन्तिम राजा था और सर्प के डसने से उसकी मृत्यु हो गई थी। महाभारत में लिखा है कि—

वेष्टयित्वा च वेगेन विनद्य च महास्वनम् ।
अदशत्पृथिवीपालं तक्षकः पन्नगेश्वरः ॥ ॥आदिपर्व ॥

अर्थात्—सर्पनाथ तक्षक ने अपने शरीर से महाराजा परीक्षित के शरीर को लपेट करके अतिगर्जन के साथ उसे काट लिया। किन्तु इस जगत् में इनके अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं।

२—दूसरा भेद महर्षि जी सर्पों का इस प्रकार लिखते हैं—

ये तु दंष्ट्राविषा भौमा ये दंशन्ति च मानुषान् ।
तेषां संख्यां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥

पृथ्वी के साँप दंष्ट्राविष वाले होते हैं। ये मनुष्यों को दांतों से काटते हैं और इनकी दाढ़ों में विष होता है। इनकी संख्या के विषय में महर्षि जी ने सुश्रुत में इस प्रकार लिखा है—

अशीतिस्त्वेव सर्पाणां भिद्यते पञ्चधा तु सा ।
दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तस्तथैव च ॥
निर्विषा वैकरञ्जाश्च त्रिविधास्ते पुनः स्मृताः ।
दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तश्च पन्नगाः ॥

अर्थ—ऐसे सर्प अस्सी प्रकार के होते हैं। इनके भेद पांच हैं। यथा—दर्वीकर, मण्डली, राजिमान्, निर्विष और वैकरञ्ज। ये फिर आकार की दृष्टि से तीन प्रकार के माने हैं। यथा दर्वीकर, मण्डली और राजिमान्। अब इनके भेदों के विषय में विस्तार से लिखते हैं।

१ दर्वीकर

सुश्रुत में लिखा है कि—

तेषु दर्वीकरा ज्ञेया विंशतिः षट् च पन्नगाः ॥

अर्थ—उनमें दर्वीकर २६ प्रकार के होते हैं। दर्वी कड़छी को कहते हैं। कर का यहाँ फण के अर्थ में प्रयोग हुआ है। अर्थात् कड़छी के समान सिर वा फण वाले सर्पों को दर्वीकर कहते हैं। महर्षि जी दर्वीकरों के भेद इस प्रकार लिखते हैं—

तत्र दर्वीकराः—"कृष्णसर्पो, महाकृष्णः, कृष्णोदरः, श्वेतकपोतो, बलाहको, महासर्पः, शंखकपोलो, लोहिताक्षो, गवेधुक्, परिसर्पः, खण्डफणः, ककुदः, पद्मो, महापद्मो, दर्भपुष्पो, दधिमुखः पुण्डरीको, भृकुटिमुखो, विष्किरः पुष्पाभिकीर्णो गिरिसर्पः, रज्जुसर्प, श्वेतोदरो, महाशिरा, अलगर्द, आशीविष इति।

वैसे तो ऋषियों ने ये २६ प्रकार के माने हैं। परन्तु जितने भी ये फण वाले सांप हैं, सब इनमें आ जाते हैं। ये अपने फण को जब इच्छा होती है प्रसारित करते अर्थात् फैलाते हैं इसी प्रकार संकुचित करते रहते हैं। कड़छी के समान फण होने के कारण इनका नाम फणी अर्थात् दर्वीकर पड़ा है। ऊपर लिखे गये श्लोकों में इन्हीं के नाम दिये हैं जिनका अर्थ इस प्रकार है—

१—काला सांप जो घोर काला हो, २ काले पेट वाला सांप, ३ सफेद कबूतर जैसे रंगवाला, बड़े कबूतर के समान रंग वाला अर्थात् जिसका सर्वथा कबूतरी रंग हो, ५ बादल के समान रंगवाला, ६ बड़ा सांप अर्थात् अजदाहा, ७ शंख के समान सिर हो, ८ लाल आंखों वाला, ९ गायों के समान रंगवाला, १० हर समय

घूमने वाला अर्थात् शिकारी सांप, ११ जिसके फण मध्य में से फटे हुए हों, १२ ककुद अर्थात् कलगी वाला सांप, १३ कमल के समान चिह्न वाला, १४ बड़े कमल के समान चिह्न वाला, १५ जिसका रंग कासनी के पुष्प के समान हो, १६ दही के समान अत्यन्त सफेद मुख वाला, १७ जिसके फण पर पुण्डरीक कमल का चिह्न हो, १८ जिसका भृकुटि के समान छोटा मुख हो, १९ अत्यन्त विषैला, २० पुष्पों के गुच्छों के समान रंगवाला, २१ पहाड़ी (पर्वतीय) सांप, २२ सीधा सांप, २३ सफेद पेट वाला, २४ जिसकी शिरायें मोटी, मोटी हों २५ जल में रहने वाला, २६ जिसका विष तुरन्त ही प्रभाव डाले। इसप्रकार के चिह्न और आकृतियों से इन सर्पों को चिकित्सकों को जानने का यत्न करना चाहिए।

इनके विषय में सुश्रुत में लिखा है—

रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः।
ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगामिनः॥

अर्थात् चक्र (पहिया) हल, छत्र, स्वस्तिक (चौराहा), अंकुश आदि के चिह्न इसके फणों के उपरि भाग पर होते हैं। ये सभी फण वाले तथा शीघ्रगामी होते हैं। चरक शास्त्र में यह लिखा है "दर्वीकरः फणी ज्ञेयः" अर्थात् फण वाले को ही दर्वीकर कहते हैं। कोई-कोई सर्प तो इनमें घोड़े से भी तेज दौड़ने वाले होते हैं। जब ये क्रोध में आते हैं तो रुककर और फण फैलाकर आक्रमण करते रहते हैं और प्राणी को काटते हैं। इन फणियरों को भोगी भी कहते हैं। ये गोखुर (Cobra) शंखचूर (King Cobra) फनेर या कालीनाग तथा केवट आदि नामों से प्रसिद्ध हैं और शीघ्र चलना इनके मुख्य लक्षण हैं। ये अति क्रोधी होते हैं। काटते समय क्रोध के कारण एक तिहाई के लगभग फण फैलाकर खड़े हो जाते हैं। कितने तो इनमें इतने विषैले होते हैं कि जिनके काटने से मृत्यु कुछ ही मिनटों में हो जाती है। ऐसे सांप पुराने टूटे घरों और खण्डहरों में रहा करते हैं। ये दो से छः फिट तक लम्बे होते हैं। कोई-कोई इससे भी अधिक लम्बे होते हैं। इनमें से कुछ का रंग मटियाला, दूधिया, पीत, हरित, सुनहरा और ताम्र वर्ण का होता है। ये अत्यन्त विषैले सर्प साधारणतया दो सौ वर्ष अथवा इससे भी अधिक वर्ष तक जीते हैं।

'दिवाः दर्वीकराः स्मृताः, ये दर्वीकर सांप दिन में घूमा करते हैं अथवा इनके घूमने का समय दिन ही है। इनमें 'दर्वीकरास्तु तरुणा···मृत्युहेतवः' दर्वीकर सांप तरुण अवस्था अर्थात् जवानी में अधिक विषैले होते हैं। ये यदि काट जा वें तो

मृत्यु का कारण होते हैं। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इनकी स्मरण शक्ति अति तीव्र होती है। अतः अपने सताने व मारने वाले को वर्षों के पीछे तक भी पहचानते हैं और पहचान कर काट लेते हैं। जिस किसी ने कभी ऐसे सर्प को मारने का यत्न किया हो और मरने से सर्प बच गया हो तो उससे सावधान रहना चाहिए, ऐसा सर्पविशेषज्ञों का मत है।

जिस प्रकार दोष तीन होते हैं उसी प्रकार सांपों की प्रकृति भी तीन होती हैं। दर्वीकर सांप वात प्रकृति वाले होते हैं। दर्वीकर के काटने से उसके विष से रोगी की जो अवस्था होती है उसके विषय में सुश्रुत में इस प्रकार लिखा है:—

"तत्र दर्वीकरविषेणत्वङ्नयननखदशनावदनमूत्रपुरीषदंशकृष्णत्वं रौक्ष्यं शिरसो गौरवं सन्धिवेदना कटिपृष्ठग्रीवादौर्बल्यं जृम्भणं वेपथुः स्वरावसादो घुर्घुरको जडता शुष्कोद्गारः कासश्वासौ हिक्का वायोरूर्ध्वगमनं शूलोद्वेष्टनं तृष्णा लालास्रावः फेनागमनं स्रोतोऽवरोधास्तास्ताश्च वातवेदना भवन्ति।

अर्थात् दर्वीकर फण वाले सांप के काटने से विष के कारण रोगी की त्वचा, नख, आँख, मुख, मूत्र, मल, एवं दंश स्थान सब काले पड़ जाते हैं। रूक्षता (रूखापन) सिर में भारीपन संधियों अर्थात् जोड़ों में वेदना (पीड़ा) कटि, पीठ, ग्रीवा में दुर्बलता, जम्भाई आना, कम्पन, स्वर का बैठना, गले में घर्घराहट, जड़ता, सूखे उद्गार, कास, श्वास, हिक्का (हिचकी), वायु का ऊपर का जाना, शूल ऐंठना, प्यास, लार का गिरना, झाग का आना, स्रोतों का बन्द हो जाना और वायु से होने वाली नाना वेदनायें (पीड़ायें) होती हैं। ये सब वात के लक्षण हैं। वातज रोगों में जो लक्षण होते हैं वे ही दर्वीकर सांपों के काटने से होते हैं क्योंकि दर्वीकर सांप वातप्रधान होते हैं। अतः उनके काटने से वायु के प्रकोप के विशेष लक्षण देखने में आते हैं। सांप के काटने से होने वाली अधिक मृत्यु दर्वीकर के काटने से होती हैं। यह भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में मिलता ही है। इसके अतिरिक्त दक्षिणी एशिया के चीन आदि देशों व मलाया आदि द्वीपों में मिलता है। इसकी प्रायः तीन जातियां भारतवर्ष में मिलती हैं। पंजाब, हरयाणा, राजस्थान, मध्य भारत तथा सौराष्ट्र में काले रंग का सर्प मिलता है, जिसके फण पर कोई स्पष्ट चिह्न नहीं होता। बंगाल में प्रायः एशिया फणीयर मिलते हैं, जिनके फण पर श्वेत या मैले से रंग का चक्र का चिह्न मिलता है। दूसरी प्रकार का एक सर्प बंगाल में और भी मिलता है, जिसके फण पर ऐनक का

चिह्न मिलता है।

भारतवर्ष में प्राय: फणीयर का रंग काला ही होता है। कहीं-कहीं हलका पीला अथवा बादामी रंग देखने में आता है। भूमि के रंग के अनुसार भी फणीयरों का रंग देखने में आता है। पूर्वी अफ़्रीका में लाल भूमि होने के कारण ईंट के समान लाल रंग के फणियर देखने में आते हैं। दक्षिणी भारत में काली भूमि होने के कारण फणियर का रंग स्लेट के समान काला होता है। सिन्ध आदि रेतीले देशों में दर्वीकर का रंग रेत के समान ही होता है। फणीयर को संगीत सुनने में बड़ी रुचि होती है। इसलिए सपेरे दर्वीकरों को ही पकड़ते हैं। बीन का स्वर तो इसको मोह ही लेता है। बीन, सितार, हारमोनियम आदि बाजों के स्वरों को सुनकर यह बिल से बाहर निकल आता है। जहां यह वीर होता है वहाँ डरपोक भी होता है। थोड़ा-सा शब्द सुनकर भागने का यत्न करता है और मनुष्य से बचने के लिए अपने आपको छिपाने का यत्न करता है, किन्तु अवसर पर वीरता पूर्वक आक्रमण भी करता है। दर्वीकरों में सबसे भयंकर विषैला सांप शेषनाग है। इसी को अंग्रेजी में (King Cobra) तथा अन्य देशी भाषाओं में महानाग तक शंखचूर आदि कहते हैं। यह १८-२० फीट लम्बा देखने में आता है। प्राय: इसकी लम्बाई १० वा १२ फीट ही होती है। इसके काटने से पक्षाघात हो जाता है और श्वास की गति रुकने से दस पन्द्रह मिनट में मृत्यु हो जाती है। इसके काटने से हाथी जैसे पशु भी परलोक सिधार जाते हैं। जितने विष से एक मनुष्य मरता है, शेषनाग उससे दशगुणा विष एक बार के दंश में छोड़ देता है। शेषनाग के दर्शन घने जंगलों तथा पर्वतों में ही होते हैं। कितने ही प्रान्तों के हिन्दु लोग शेष-नाग की पूजा करते हैं। ऐसे भयंकर सांपों के काटने पर प्राय: चिकित्सक के पास पहुंचने का समय भी नहीं मिलता, पहले ही रोगी काल के ग्रास में सभा जाता है। शेषनाग अपना निर्वाह सांपों को खाकर करता है। सांपों को भोजन के रूप में खाने के कारण इनका नाम भुजंगभुक् भी कहा है। यहां तक कि यह बड़े-बड़े अजगरों को भी खा जाता है फिर मनुष्य जैसे प्राणी की क्या शक्ति है जो इस सर्प के काटने पर मृत्यु से बच सके। इस भयंकर प्राणी शेषनाग से सर्वथा बचकर दूर रहना चाहिये। छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये।

वैसे तो सभी दर्वीकरों के विषय में शास्त्रकार यह लिखते हैं कि —"दर्वी-कराणां विषमाशुघाती" दर्वीकर अर्थात् फणवाले सांपों का विषशीघ्र ही प्राणनाश

करता है। इसलिए यह प्रसिद्ध ही है कि काले सांप का काटा हुआ तुरन्त ही मर जाता है। इसलिए काले सर्प का नाम सुनकर लोग प्रायः भयभीत हो जाते हैं।

२. मण्डली

"द्वाविंशतिर्मण्डलिनः" मण्डली सांप बाईस प्रकार के होते हैं। सुश्रुत में लिखा है—

मण्डलैर्विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः।
ज्ञेया मण्डलिनो सर्पा ज्वलनार्कसमप्रभाः॥

(चरक कल्पस्थान अ० २३, श्लोक १५)

जो सर्प नाना प्रकार के गोले-गोल मण्डलों से चित्रित होते हैं, चपटे, धीमे चलने वाले, अग्नि और सूर्य के समान कान्ति वाले होते हैं उन सांपों को मण्डली कहते हैं। इनके शरीर पर अनेक प्रकार की चित्तियां होती हैं, अतः इनका नाम चित्तीदार भी है। इनके भेदों के विषय में सुश्रुत में इस प्रकार लिखा है—

मण्डलिनस्तु-आदर्शमंडलः श्वेतमंडलो, रक्तमण्डलः, चित्रमण्डलः, पृषतो, रोध्रपुष्पो, मिलिन्दको गोनसो, वृद्धगोनसः, पनसो, महापनसो, वेणुपत्रकः शिशुकोमदनः पालिन्दिरः, तन्तुकः, पुष्पपाण्डुः षडङ्गः अग्निकः, बभ्रुः कषायः, कलुषः, पारावतो, हस्ताभरणः, चित्रकः, एणीपद इति"

१. सुन्दर चिकत्तेदार सांप, २. सफेद चितके वाला सांप, ३. लाल चित्तों वाला सांप, ४. चित्त के समान मंडल वाला सांप, ५. विशेष प्रकार के पुष्पों के चिह्न वाला सांप, ६. मिलिन्दक पुष्प के समान चिह्न वाला सांप, ७. गोनस पुष्प के समान चिह्न वाला सांप, ८. बड़े गोनस पुष्प के समान चिह्नों वाला सांप, ९. जिसके शरीर पर कांटे हो ऐसा सांप, १०. जिसके शरीर पर बड़े-बड़े कांटे हों, ऐसा सांप, ११. जिसका मुख बांस के पत्तों के समान हो ऐसा सांप, १२. छोटा सांप जो अत्यन्त सुन्दर हो, १३. पालिन्दिर नाम के पुष्प के समान चिह्न वाला सांप, १४. पीले रंग का सांप, १५. तन्तुक पुष्प के समान चिह्न वाला पीला या मटियाले रंग का सांप, १६. षडंग सांप (छः अंगों वाला), १७. अग्नि के समान चमकने वाला सांप, १८. नेवले के रंग का सांप, १९. केले के रंग का सांप, २०. कबूतर के समान रंग वाला सांप, २१. हाथ के आभूषण के समान गोल सांप जिस पर अनेक प्रकार की चित्तियां हों, २२. मृग के समान गति वाला सांप। ये मण्डली सांपों के बाईस भेद हैं। चरक शास्त्र में लिखा है—

"मंडालिमंडला फणा:" अर्थात् मंडली उनका नाम है जिन पर गोल-गोल चितके अर्थात् मंडल होते हैं और ये फण रहित होते हैं। ये कई अन्य नामों से भी प्रसिद्ध हैं चित्ति (Krait), चन्द्रबोर (Russells Viper), धूमनी, कौड़ियाला, चित्तिकरैत। अंग्रेजी में इसे वाईपर (Viper) कहते हैं, क्योंकि इनमें से कुछ जातियों को छोड़कर ये अंडे न देकर बच्चे ही देते हैं। वाईपर शब्द का अर्थ भी जीवित ही है। इस वंश की जातियां लगभग ११० हैं जो प्राय: सभी विषैली हैं। इनमें से कुछ तो ऐसे विषैले हैं कि उनका विष मनुष्य के लिए घातक है। कुछ मंडलियों के विष में न्यून शक्ति होती है, वे मनुष्य के प्राण नहीं ले सकते। इनमें अग्नि और सूर्य के समान कान्ति वाले जो सांप होते हैं वे अधिक विषैले हैं। मंडलियों के मुख्य लक्षण ये हैं:—

ये मुख और पूंछ की तरफ से पतले और पेट की जगह से मोटे होते हैं। मंडली का सिर प्राय: चौड़ा, चपटा और छोटे-छोटे वल्कलों से ढका होता है। ग्रीवा तंग और पूंछ छोटी होती है। इनके सिर कुछ-कुछ त्रिकोण आकृति वाले होते हैं। इनका शरीर भरा हुआ और अच्छा मोटा होता है। कौड़ी के समान काले, पीले, श्वेत वर्ण के चित्तों से चित्रित होने के कारण इन्हें चित्तकौड़िया भी कहते हैं। हरयाणा में तो ये इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। ये प्राय: घरों में या घरों के पास रहते हैं और चूहे आदि पकड़ कर खाते हैं। इनमें कितने ही चार फीट से आठ फीट तक लम्बे देखने में आते हैं। ये दर्वीकर की अपेक्षा कम विषैले होते हैं। ये देखने में शिथिल पड़े रहते हैं। इनमें से कुछ सर्प मंडली मारकर बैठते हैं और चलते समय इनके शरीर का एक भाग दूसरे भाग के साथ रगड़ खाता है। जिससे रस्सी के रगड़ के समान शब्द उत्पन्न होता है। मनुष्य यह समझता है कि यह फुंकारता है, परन्तु रगड़ की गति से ही यह शब्द उत्पन्न होता है। यह छेड़ने वाले पर जब शिथिलता छोड़कर धावा करता है तब एक फुट अथवा इससे भी अधिक उछल कर काटता है। मंडली मारने वाले सर्पों की लम्बाई २० से २८ इन्च तक ही होती है। यह लगभग तीन इन्च मोटा और अत्यन्त विषैला होता है। बंगाल, बिहार आदि में इसे काल नागिनी कहते हैं। इसका प्रसिद्ध नाम फूरसा है। ये पित्त प्रकृति के होते हैं। चरक शास्त्र में लिखा है—

दर्वीकरा मण्डलिनो राजिमन्तस्तथैव च।
सर्पा यथाक्रमं वातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः॥

अर्थात् दर्वीकर वात प्रकृति के, मंडली पित्त प्रकृति के और राजिमान् कफ के प्रकृति के होते हैं। अतएव क्रमशः ये वात पित्त कफ को प्रकुपित करते हैं। महर्षि धन्वन्तरि जी सुश्रुत में इनके विषय में इस प्रकार लिखते हैं—

"मंडलिविषेण त्वगादीनां पीतत्वं शीताभिलाषः परिधूपनं दाहस्तृष्णा मूर्छा ज्वरः। शोणितागमनमूर्ध्वमधश्च मांसानामवशातनं श्वयथुर्दंशकोपः पीतरूपदर्शनमाशुकोपस्तास्ताश्च पित्तवेदना भवन्ति"

मंडली सर्प के काटने से इसके विष का प्रभाव दंशित प्राणी पर पित्त प्रकुपित होने के समान पड़ता है। उसकी त्वचा नख, मल-मूत्रादि पीले हो जाते हैं। ठंडी वस्तुएं अच्छी लगने लगती हैं। सब वस्तुएं पीली दिखाई देती हैं। सभी अंगों में संताप, दाह होता है। प्यास, मद मूर्छा, सूजन, काटे हुए स्थान का सड़ना, मांस का विदीर्ण होना, मुख नासिकादि ऊर्ध्व मार्ग, गुदा मूत्रेन्द्रियादि अधो मार्गों से रक्त अर्थात् खून बहने लगता है। अनेक प्रकार के पीले सर्प दिखाई देते हैं। सर्प-विष शीघ्र ही प्रकुपित हो जाता है। पित्तजन्य नाना प्रकार की वेदनायें होने लगती हैं। पीड़ा बहुत होती है। मांस में पीड़ा और सूजन हो जाती है। दंश स्थान से भी खून निकलता रहता है। पित्त कुपित होने के सारे लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं। मंडली सांप रात्रि के पहिले दूसरे और तीसरे पहर में घूमते हैं।

"वृद्धा मंडलिनः···मृत्युहेतवः" वृद्ध अर्थात् ढलती हुई अवस्था वाले मंडली यदि काट लेवें तो मृत्यु के हेतु बनते हैं। जैसे हम पहिले लिख चुके हैं कि यह कुण्डली मारे सुन्न-सा पड़ा रहता है। किन्तु अपने शिकार को पकड़ने और शत्रु पर आक्रमण करने में बड़ा चुस्त और फुर्तीला होता है। सूर्यास्त के पश्चात् प्रथम तीन प्रहरों में यह अपने भोजन की खोज में निकलकर बाहर घूमता है। दिन में कभी-कभी दिखाई देता है। अतः इसे रात्रि सर्प कहते हैं। मूषक (मूसा चूहा) इसका प्यारा भोजन है। यह पानी से डरता है। पानी में घुसा हुआ इसे शायद ही किसी ने देखा हो। इसके विषय में यह सन्देह है कि यह जल भी पीता है या नहीं। इस कुण्डली मारकर बैठने वाले सांप को रसल मंडली कहते हैं। यह छेड़ने पर इकट्ठा हो जाता है। क्रोध में तेजी से निरन्तर फुंकार मारता रहता है। आक्रमण करने के समय तो इसकी फुंकार भयंकर रूप धारण कर लेती है। इसकी फुंकार का शब्द सब सर्पों की फुंकार से ऊंचा होता है। इसकी फुंकार को सुनकर मनुष्य भयभीत हो जाता है। जब यह अपने फेफड़ों को वायु से भरकर नथुनों

के द्वारा श्वास को बाहर फेंकता हुआ किसी निर्जनशान्त स्थान पर शब्द करता है तो इसका शब्द रेलगाड़ी के इंजन के शब्द जैसा प्रतीत होता है। हरयाणा में यह गुरेहड़िया नाम से प्रसिद्ध है। फुरसा, कौंड़या, चित्त कौड़िया, धामन आदि प्रसिद्ध नाम वाले सांप भी मंडली जाति के ही सांप हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों में ये भिन्न-भिन्न नामों से प्रसिद्ध हैं।

कौड़िया

भारत में दसियों प्रकार के कौड़िया सांप मिलते हैं। ये भी अन्य मंडलियों के समान रात को बाहर निकलते हैं। रात में राही या सड़क की धूली में पड़ा रहता है। इसलिए अधिक भयानक है। यह मार्ग के ठंडे-ठंडे रेत में लेटने में आनंद लेता है और बहुत सीधा तथा डरपोक होता है। यह स्वयं काटने का कभी यत्न नहीं करता, परन्तु मार्ग में पड़े रहने के कारण पैर पड़ने पर काट लेता है। इसका जोड़ा ही प्रायः निकलता है। मेंढक और मूषक इनका प्यारा भोजन है। यह पतला और रंग का चमकीला होता है। बीच-बीच में चौड़ाई की ओर सफेद रंग की धारियां होती हैं। धारियां अकेली या इकट्ठी दो पाई जाती हैं। इसका उदर श्वेत होता है। यह तीन से पांच फीट तक लम्बा होता है। इसका विष भी तीव्र होता है। फणियर की अपेक्षा इसका विष पांच छः गुणा अधिक तीव्र होता है। कौड़िये के विष के लक्षण फणियर के समान होते हैं। भारतवर्ष में इसके काटने से वर्ष में पर्याप्त मृत्यु होती हैं। डाक्टर लोग इसकी चिकित्सा के लिए कोई प्रति विष रूप में इंजैक्शन नहीं तैयार कर सके हैं। इस निर्बलता को वे स्वयं भी स्वीकार करते हैं।

चितकौड़िया

यह भी मण्डली सर्पों की एक प्रसिद्ध जाति है। यह सांपों को बड़ो रुचि से खाता है। इसकी लम्बाई ५—६ फीट वा इससे अधिक भी होती है। यह कौड़िये के समान ही होता है। भेद केवल इतना है कि इसकी पीठ पर चौड़ी-चौड़ी पट्टियां होती हैं। पीठ पर काली और पीली पट्टियां बड़ी सुन्दर लगती हैं। पट्टियों की चौड़ाई एक से डेढ़ इन्च तक होती है। यह कौड़ियों की अपेक्षा अधिक विषैला है। यह भारत वर्ष में प्रायः सर्वत्र ही मिलता है।

धामन

यह मण्डली सांप बहुत तेज और फुर्तीला होता है। भागने में घोड़े को भी

पीछे छोड़ देता है। इसलिये घोड़ापछाड़ भी इसका नाम पड़ गया है। यह शरीर से पतला और लम्बाई में ६ फीट वा इससे अधिक भी होता है। यह चूहे आदि हानिकारक जीवों को खाता है, इसलिये किसानों के लिए हितकारी है। यह विष-हीन सांप गेहुंओं के खेतों में मिल जाता है। भारत के कई प्रान्तों में इसके मारने पर मारने वाले पर जुर्माना किया जाता है। यह हल्के मटियाले रंग का होता है। इसके शरीर पर काले रंग के धब्बे होते हैं। इसकी आंखों में तेज होता है वे और सुन्दर होती हैं। इसी प्रकार अन्य भी मण्डली सांपों की जातियां होती हैं।

३ राजिमान्

राजिल अर्थात् धारीदार सांपों को राजिमान् कहते हैं। "राजिमन्तस्तथा दश" यह सुश्रुत का वचन है। महर्षि धन्वन्तरि जी राजिमान् सांपों के दश भेद मानते हैं। वे भेद निम्न लिखित हैं—

१—जिसके सिर पर कमल के फूल का चिह्न हो और जिस पर धारियां-लकीरें सुन्दर हों। २. जिसकी धारियां अंगुली के समान हों, ३. जिसके शरीर पर बिन्दुओं की धारियां हों, ४. जिसका रंग कीचड़—गारा के समान हो, ५. जिसके चलने से घास सूख जाती हो, ६. जिसका रंग सरसों के समान हो, ७. जिसका जबड़ा सफेद रंग का हो ८. जिसका रंग कासनी के पुष्प के समान हो और चक्र सदृश जिसके शरीर पर चिह्न हों, ९. जिसका रंग गोधूम—गेहूँ के समान हो, १०. जो चातक पक्षी को खाने वाला हो, ये दश भेद राजिमान् सर्पों के हैं।

सुश्रुत के इस लेख से पाठकगण समझ गये होंगे कि जिन सर्पों के शरीर पर चिकनी नाना प्रकार के वर्णों की तिरछी, सीधी और बिन्दुओं के साथ अनेक तरह की रेखायें वा धारियां होती हैं उनको राजिमान् कहते हैं। इन धारियों के कारण ही इनको धारीदार और गण्डेदार भी कहते हैं। इनका शरीर खूब साफ चिकना और देखने में सुन्दर लगता है इनकी प्रकृति कफ प्रधान होती है, इसलिये इनके डसने से प्रकुपित कफ के लक्षण प्रगट होने लगते हैं इस विषय में महर्षि धन्वन्तरि जी कहते हैं—

"राजिमद्विषेण शुक्लत्वं त्वगादीनां शीतज्वरो रोमहर्षः स्तब्धत्वं गात्राणामावंशशोफः सान्द्रकफप्रसेकच्छर्दिरभीक्ष्णमक्ष्णोः कण्डूः कण्ठे श्वयथुर्घुर्घुरक उच्छ्वासनिरोधस्तमः प्रवेशस्तास्ताश्च कफवेदना भवन्ति"।

राजिमान् सांपों के काटने से त्वचा नख आदि सफेद रंग के हो जाते हैं, शीतज्वर रोमाञ्च का होना, अङ्गों में शिथिलता वा जड़ता, दंशस्थान के चारों ओर सूजन, गाढ़े कफ का मुख से निकलना बार-बार वमन होना आंखों में खुजली, कण्ठ में सूजन और घर्घराहट, श्वास का थकना, अन्धेरी आना और कफ से होने वाली अनेक प्रकार की वेदनायें होने लगती हैं। सुश्रुत में लिखा है—

"रजन्या: पश्चिमे यामे सर्पाश्चित्ताश्चरन्ति हि" अर्थात् रात्रि के पिछले प्रहर में ही राजिमान् सर्प घूमते हैं। उनको राजिल और राजसर्प भी कहते हैं। उनके मुख्य लक्षणों में गण्डे, रेखायें, धारियां तथा शरीर की सुन्दरता है।

"राजिमन्तो वयो मध्या जायन्ते मृत्युहेतव:"

राजिमान् सांप मध्यवय अर्थात् अधेड़ आयु में यदि काटलें तो मृत्यु का कारण बनते हैं।

४—निर्विष

महर्षि धन्वन्तरि जी विषैले सर्पों को तीन प्रकार का मानते हैं। जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं "निर्विषाद्वादशज्ञेयाः" जिनमें विष की मात्रा थोड़ी होती है, वा होती नहीं, उनको निर्विष कहते हैं। उनके बारह भेद हैं जिनके नाम नीचे लिखे हैं।

"निर्विषास्तु—गलगोली, शूकपत्र:, अजगरो दिव्यको वर्षाहिक, पुष्पशकली, ज्योतीरथ, क्षीरिका, पुष्पक:, अहिबलाक: अन्धाहिको, गोराहिको वृक्षेशय इति।"

१. जिसकी ग्रीवा गोल हो, अथवा जिसकी विष की गोली गल गई हो।
२. नोकदार नुकीले बालों वाला अथवा जौ की तरह मध्य से मोटा और दोनों ओर से पतला अथवा आगे मोटा, पीछे से पतला।
३. बड़ा अजदाहा बड़ा सांप।
४. बहुत चमकने वाला सांप, चन्दन पर रहने वाला।
५. वर्षाऋतु में निकलने वाला सांप।
६. जिसके शरीर के विविध स्थानों पर फूल के आकार हों।
७. ध्रुव तारे के समान जिसका शरीर हो।
८. खीरनी के फूल के रंगवाला अर्थात् दुधियाला।

९. लम्बा सांप या अविक्षिप्त सांप।

१०. भूमि में गड़ने वाले अन्धे सांप।

११. सफेद सांप।

१२. वृक्ष पर रहने वाला सांप।

ये १२ भेद निर्विष सांपों के हैं। अजगर, दुमुही, पानी का सांप भी इन्हीं में हैं। अजगर मनुष्य या छोटे पशु को निगल तो जाता है परन्तु काटता नहीं। दुमुही खेतों में मनुष्य के शरीर या पैरों में लिपट तो जाती है परन्तु हानि नहीं करती। बालक इसके साथ खेलते रहते हैं। इसी प्रकार जल में रहने वाले पनिया सांप के काट लेने से या तो विष चढ़ता ही नहीं या बहुत कम पड़ता है।

निर्विष सांपों के ऊपर के जबाड़े में दांतों की दो पंक्तियां पाई जाती हैं और जबाड़े के बाह्य किनारे पर विषैले दांतों के स्थानों में दांतों की एक अधिक पंक्ति पाई जाती हैं और सामने बारीक दांतों के द्वारा उक्त दोनों पंक्तियां मिलती हैं प्रत्येक पंक्ति में १० से ३० तक कठोर दांत पाये जाते हैं। इसके विरुद्ध विषैले सर्पों के ऊपर के जाबड़े में दोनों ओर दांतों की केवल एक ही पंक्ति पाई जाती है और दूसरी पंक्ति के स्थान में केवल दो तीन या चार पोले दांत जो विष के होते हैं पाये जाते हैं। कुछ लोगों का ऐसा मत है कि विष रहित सर्प अधिक लम्बे और मोटे होते हैं। उनकी पूंछ और सिर श्वेत वर्ण के होते हैं।

५. वैकरञ्ज ॥

.... वैकरञ्जास्त्रयस्तथा।
वैकरञ्जोद्‌भवाः सप्तचित्रा मण्डलिराजिलाः ॥

सुश्रुत, कल्पस्थान अध्याय—४ श्लोक १२

ये दोगले सर्प इन्हीं दर्वीकर आदि तीनों के मिलाप से होते हैं। चित्रित मण्डली, राजिमान् और वैकरञ्जों से उत्पन्न सांप सात हैं अर्थात् मण्डली से चार और राजिमान् से तीन। इनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है इसके विषय में महर्षि धन्वन्तरि जी इस प्रकार लिखते हैं।

"वैकरञ्जास्तु त्रयाणां दर्वीकरादीनां व्यतिकराज्जाताः तद्यथा—माकुलिः पोटगलः स्निग्धराजिरिति। तत्र कृष्णसर्पेण गोनस्यां वैपरित्येन वा जातो माकुलिः राजिलेन गोनस्यां वैपरित्येन वा जातः पोटगलः कृष्ण-सर्पेण राजिमत्यां वैपरित्येन

वा जातः स्निग्धराजिरिति तेषामाद्यस्य पितुर्विषोत्कर्षो द्वयोर्मातृवदित्येके"

[सुश्रुत कल्पस्थान अ० ४]

वैकरञ्ज अर्थात् दोगले सांप इन दर्वीकरादि तीनों के मेल से उत्पन्न होते हैं।

(१) फणियर और मण्डली सर्पों के मेल से माकुलि उत्पन्न होता है।

(२) कौड़िया और मंडली के संयोग से पोटगल उत्पन्न होता है।

(३) चिकनी धारियों वाला सांप, फणियर और कोड़िये के संयोग से उत्पन्न होता है। इनमें माकुलि सर्प के विष का स्वभाव पिता के सदृश तथा पोटगल और स्निग्धराजि के विष का स्वभाव माता के समान होता है।

"त्रयाणां वैकरञ्जानांकुलदिव्येलकरोध्रपुष्पकराजिचित्रकपोटगल पुष्पाभिकीर्णदर्भपुष्पवेल्लितकाः सप्त, तेषामाद्यास्त्रयो राजिलवत्, शेषा मंडलिवत्, एवमेतेषां सर्पाणामशीतिर्व्याख्याताः"

(सु० क० अ० ४)

तीनों वैकरञ्ज सर्पों के भेद सात हैं। यथा—दिव्येलक रोध्रपुष्पक, राजिचित्रक, पोटगल, पुष्पाभिकीर्ण, दर्भपुष्प, वेल्लितक। इनमें पहले तीन का विष राजिमन् सांपों की भांति और शेषों का विष मण्डली के समान होता है। इस प्रकार इन सांपों के भेद अस्सी प्रकार के हुये।

इन सांपों के सब भेदों को अनुभवी सपेरे अथवा सर्प विशेषज्ञ ही भली-भांति जान सकते हैं। सामान्य मनुष्यों के लिये इनकी आकृति देखकर सब भेदों को जानना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है।

सर्प, सर्पिणी के लक्षण भेद—

तत्रमहानेत्रजिह्वास्याशिरसः पुमांसः सूक्ष्मनेत्रजिह्वास्यशिरसः स्त्रियः, उभयलक्षणा मन्दविषा अक्रोधा नपुंसका इति।

(सु० कल्पस्थान अ० ४)

अर्थात् इनमें जिनके नेत्र, जिह्वा, मुख और शिर बड़े और मोटे होते हैं वे पुरुष अर्थात् सर्प, तथा जिनके नेत्र, जिह्वा, मुख और शिर सूक्ष्म (छोटे) होते हैं उन्हें स्त्री अर्थात् सर्पिणी जानना चाहिये और जिसमें दोनों लक्षण विद्यमान हों वे मन्द (अल्प) विष वाले क्रोधरहित नपुंसक (हीजड़े) होते हैं।

दंश भेद के लक्षण

"पुरुषाभिदष्ट ऊर्ध्वंप्रेक्ष्यते"—पुरुष सांप से काटा हुआ रोगी ऊपर को देखता है। "अधस्तात्स्त्रिया सिराश्चोत्तिष्ठन्ति ललाटे"—स्त्री सर्पिणी से दंशित रोगी नीचे देखता है और उसके माथे में सिरायें (नसें) उठी अर्थात् उभरी हुई हो जाती हैं। "नपुंसकाभिदष्टस्तिर्यक् प्रेक्षी भवति"—नपुंसक (हीजड़े) सांप का काटा रोगी तिरछा अर्थात् टेढ़—पार्श्व में देखता है। "गर्भिण्या पाण्डुमुखो ध्मातश्च"—गर्भवती सर्पिणी से काटे रोगी का मुख पीला पड़ जाता है तथा मुख और पेट फूल (सूज) जाता है। "सूतिकया कुक्षिशूलार्तः सरुधिरं मेहति उपजिह्विकास्य भवति" प्रसूता सर्पिणी के काटे हुये रोगी के उदर में शूल होता है तथा मूत्र में रक्त (खून) मिला आता है और उपजिह्विका नाम का रोग भी हो जाता है। "ग्रासार्थिनाप्न्नं काङ्क्षति" भूखे सर्प के काटने से रोगी अन्न (भोजन) की इच्छा करता है। "वृद्धेन चिरान्मन्दाश्च वेगाः बालेनाशुमृदवश्च, निर्विषेणाविषलिङ्गम्" अथात् बूढ़े सर्प के काटने पर विष का वेग (जोर) मन्द (अल्प) रहता है और देर से चढ़ता है। बालक (थोड़ी आयु) के काटने पर विष भी चढ़ता है परन्तु वेग मन्द ही रहता है और निर्विष सांप के काटने पर विष का लक्षण (प्रभाव) नहीं रहता। "अन्धाहिकेनाऽन्धमित्येके"—अन्धे सांप के काटने से रोगी अन्धा हो जाता है। ऐसा किसी-किसी का मत है। "ग्रसनादजगरः शरीरप्राणहरो न विषात्"—अजगर सांप प्राणी को निगलकर समाप्त करता है। अजगर में विष नहीं होता अतः विष से प्राणनाश नहीं होता।

विषैले सर्पदंश का प्रभाव

"तत्र सद्यः प्राणहराहिदष्टः पतति शास्त्राशनिहत इव भूमौ, स्रस्तांगः स्वपिति"

(सु० कल्प० अ० ३६ श्लोक ४)

जब भयंकर प्राण हरने वाला विषधर किसी को काटता है, तो वह चिकित्सा के लिये अवसर नहीं देता। रोगी तुरन्त ही शस्त्र (हथियार) अथवा विद्युत् (बिजली) से आहत—मारे हुए के समान भूमि पर गिर पड़ता है। इसके सारे शरीर के अंग शिथिल ढीले पड़ जाते हैं और वह सदा के लिये गम्भीर, न समाप्त होने वाली नींद में सो जाता है ऐसे विषैले सर्पों की चिकित्सा किसी शास्त्र में

अथवा किसी भी पैथी (शिक्षा पद्धति) में नहीं है। जब औषध देने वा किसी भी प्रकार की चिकित्सा वा उपचार करने का समय ही मृत्यु प्रदान नहीं करती तब कोई चिकित्सा कैसे कर सकता है। ऐसे सर्पों का काटना साक्षात् मृत्यु ही समझना चाहिये।

सर्पदंशन की सांधातिक अर्थात् साध्या-साध्य अवस्थाओं पर विस्तार से विचार आगे चलकर करना है।

सर्प दंश भेद:—

सर्प भिन्न-भिन्न प्रकार से काटते हैं। इस विषय में महर्षि धन्वन्तरि लिखते हैं।

पादाभिमृष्टा दुष्टा वा क्रुद्धा ग्रासार्थिनोऽपि वा।
ते दशन्ति महाक्रोधा त्रिविधं भीमदर्शनाः॥

(सु० अ० ४ श्लोक १३)

सर्प तीन प्रकार से काटता है। (१) पांव से दब जाने या छू जाने से (२) स्वभाव की दुष्टता अथवा क्रोध से (३) भोजन की इच्छा से सर्प प्राणियों को काटता है। जब तक सर्प किसी भी कारण से क्रोधित नहीं होता तब तक वह काटता नहीं। अति क्रोधी होकर जब सर्प काटता है तो इसका रूप भी भयानक होता है। और क्रुद्धावस्था में काटने पर ही विष छोड़ता है सामान्य अवस्था में काटता भी नहीं। यदि बिना क्रोध के काट भी ले तो भय करने की आवश्यकता नहीं, कई बार तो ऐसी अवस्था में चिकित्सा की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। जब सर्प अत्यन्त क्रुद्ध अवस्था में उद्धत होकर काटता है तो वह अवस्था भयानक होती है। तब चिकित्सा में बड़ी सावधानी करनी पड़ती है। क्रुद्धावस्था में जब सर्प काटता है वह भी तीन प्रकार का होता है।

सर्पितं रदितं चापि तृतीयमनिर्विषम्।
सर्पाङ्गाभिमतं केचिदिच्छन्ति खलु तद्विदः। सु० अ० ४

(१) सर्पित (२) रदित और (३) निर्विष तथा कोई-कोई सर्पविष-विशेषज्ञ वैद्य सर्पाङ्गाभिहत अर्थात् सर्प के छू जाने को भी एक प्रकार मानते हैं।

सर्पित के लक्षण

पदानि यत्र दन्तानामेकं द्वे वा बहूनि वा ।
निमग्नान्यल्परक्ता नियान्युद्धृत्य करोति हि ॥१५॥
चञ्चुमालकमुक्तानि वैकृत्यकरणानि च ।
संक्षिप्तानि सशोथानि विद्यात्तत्सर्पितं भिषक् ॥१६॥

(सु० अ० ४)

साँप जब काटता है तो उस काटे हुए स्थान पर एक दो अथवा बहुत दांतों के चिह्न गहरे गड़े हुये प्रतीत हों और उनके निकलने पर थोड़ा रुधिर भी निकला हुआ हो और उनके निकलने पर दांतों की पंक्ति पूरी गड़ी सी प्रतीत हो अर्थात् जिन दांतों के चिह्नों को सांप ने उलट कर किया है जो इन्द्रियादिक में विकार उत्पन्न कर दें तथा दाढ सम्यक् रीति से बैठ गई हो और दंश स्थान पर शोथ भी हो, उनको वैद्य लोग सर्पित समझें। अर्थात् पूर्णरूपेण से भली भांति सर्प से डसा है।

सर्व साधारण लोग तथा कुछ डाक्टरी के ग्रन्थ भी इस प्रकार मानते हैं कि विषैले सर्प दर्वीकर आदि के काटने पर दंश स्थान पर दो दांतों के (० ०) इस प्रकार चिह्न होते हैं। जिनके बीच में १/२ इंच के लगभग अन्तर (दूरी) होती है किन्तु यह सर्वथा सत्य नहीं। क्योंकि विषैले तथा निर्विष दोनों प्रकार के सर्पों के काटने पर एक दो अथवा अधिक दांतों के चिह्न देखने में आते हैं। अतः विषैले और निर्विष सर्प के दंश का ज्ञान तथा सर्पित और रदित आदि का भेद पर्याप्त के पीछे होता है।

रदित और निर्विष का लक्षण

राज्य सलोहिता य नीलाः पीताः सितास्तथा ।
विज्ञेयं रदितं तत्तु ज्ञेयमल्पविषं च तत् ॥१७॥
अशोथमदुष्टासृक् प्रकृतिस्थस्य देहिनः ।
पदं पदानि वा विद्यादविषं तच्चिकित्सकः ॥१८॥

(सुश्रुत अ० ४)

जिस डसे हुए स्थान पर लाल, नीली पीली, श्वेत रेखायें (लकीरें) सी प्रतीत

हों उसे रदित समझें अर्थात् खरोंच ही आई है। उसे सर्प ने पूर्ण रूप से नहीं काटा—ऐसा समझना चाहिये। जहाँ पर सूजन थोड़ा हो वा सूजन का सर्वथा अभाव ही हो, रक्त थोड़ा दूषित हुआ हो, इन्द्रियों वा शरीर की प्रकृति में कोई विकार न हो चाहे एक या अधिक दांतों के चिह्न भी हों तो भी वह दंश निर्विष अर्थात् विषरहित समझना चाहिये। विषैले सर्प के काटते ही तुरन्त ही रोगी के शरीर तथा इन्द्रियों पर प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकृति का सर्प काटता है उसी दोष के प्रकुपित होने के लक्षण डसे हुये प्राणी पर प्रकट होने लगते हैं। इसके विपरीत निर्विष सर्प के काटने अथवा रदित (थोड़ा निर्विष दंश) होने पर शरीर व इन्द्रियों पर कोई विकार नहीं होता। अनुभवी वैद्य शरीर, प्रकृति और इन्द्रियों पर पड़ने वाले प्रभाव से ठीक जांच कर सकता है। दांत के चिह्न से तो अनेक बार भ्रम ही में पड़ सकता है।

"सर्पाङ्गाभिहत के लक्षण"

सर्पस्पृष्टस्य भीरोर्हि भयेन कुपितोऽनलः ।
कस्यचित् कुरुये शोथं सर्पाङ्गाभिहतं तु तत् ॥

सुश्रुत कल्प अ० ४

जो भीरु मनुष्य होता है उसके शरीर को यदि सर्प छू भी जाने से ही भयभीत हो जाता है कि मुझे सांप ने काट लिया इसी से वायु कुपित होकर शोथ-सूजन हो जाता है। प्रकृति बिगड़ जाती है और सर्पदंश सम्बन्धी अनेक लक्षण दिखाई देने लगते हैं। भय से रोगी पर विचित्र प्रभाव पड़ता है।

एक बार छप्पर का फूस हटाते समय एक मनुष्य को सर्प ने काट लिया। किन्तु उस मनुष्य ने उस सर्प को नहीं देखा। उसने यह समझा कि किसी झाड़ का कांटा लग गया है। सर्प विषैला नहीं था अथवा पूर्ण रूप से नहीं काट सका। अतः उस मनुष्य पर सर्प विष का कोई प्रभाव प्रकट नहीं हुआ। एक वर्ष के पीछे उसी छप्पर पर कार्य करते हुये उसी स्थान पर उसी व्यक्ति सर्प ने देखा और उसे गत वर्ष की याद आ गई और यह विचारने लगा कि "मुझे गत वर्ष कांटे नहीं लगे इस सर्प ने ही काटा था" इस विचार के आते ही वह भयभीत हो गया तथा सर्प के काटने के सब लक्षण उसके शरीर तथा इन्द्रियों पर प्रकट होने लगे। वह इतना घबराया कि अपने आप को सम्भाल न सका, अतः कुछ समय पीछे उस भीरु की मृत्यु हो गयी।

यह घटना सिद्ध करती है कि सर्प के न काटने पर भी भीरु मनुष्य केवल सर्प के सूंघ जाने से ही भयभीत हो अपने आपको सर्प से डसा हुआ समझ बैठता है तो भय से उसके मन तथा वात तन्तुओं पर भयंकर धक्का लगता है और सर्प विष के लक्षण प्रकट हो मृत्यु तक हो जाती है।

अत्यन्त हानिकारक दंश

सर्प दंश के विषय में चरक शास्त्र का मत निम्न प्रकार है—

गूढसम्पादितं वृत्तं पीडितं लम्बितार्पितम्।
सर्पितं च भृशांबाधं दंशा येऽन्ये न ते भृशाः॥

(चिकित्सा स्थान अ० २३, श्लोक १३४)

जो गहरे हों, गोल हों,, पीड़ित अर्थात् जिसमें चार दांतों के चिह्न हों, रक्त बहता हो, लम्बा हो और जो सर्पित एक स्थान से दूसरे स्थान पर गया हुआ हो, ऐसे दंश अत्यन्त हानिकारक होते हैं। ऐसे ही दंश का नाम सुश्रुत में सर्पित है। अन्य दंश इतनी हानि पहुँचाने वाले नहीं हैं। सुश्रुत के समान अन्यत्र भी 'तुण्डाहत व्यालीढ़ादि' नाम देकर दंश भेदों पर प्रकाश डाला है। विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा जाता।

चरक शास्त्र का सर्प के दांतों और विष के विषय में इस प्रकार मत है—

सर्पदंष्ट्राश्चतस्त्रस्तु तासां वामाधरासिता।
पीता वामोत्तरा दंष्ट्रा रक्तश्यावाऽधरोत्तरा॥

[चिकित्सा स्थान अ० २३-१३६]

सांप के चार दाढें होती हैं, उनमें से बायें पक्ष में नीचे की ओर की कृष्ण होती हैं और ऊपर की पीली। दाहिनी और नीचे की लाल तथा ऊपर की श्याम वर्ण की होती है।

सर्प विष की मात्रा

यन्मात्रः पतते बिन्दुर्गोबालात्सलिलोद्धृतात्।
वामाधरायां दंष्ट्रायां तन्मात्रं स्यावहेर्विषम्॥१३७॥
एकद्वित्रिचतुर्वृद्धि विष भागोत्तरोत्तरा॥

जल में से निकाले हुए गौ की पूंछ के बाल से जल की जितनी बूंद गिरती हैं, उतना ही विष सांप की बाईं ओर की नीचे की दाढ़ में होता है। अन्य दांतों में उत्तरोत्तर अधिक होता है अर्थात् वाम पार्श्व की ओर नीचे की दाढ़ में एक बूंद, ऊपर की दाढ़ में दो बूंद, दाहिनी ओर की नीचे की दाढ़ में एक बूंद और ऊपर की दाढ़ में चार बूंद विष होता है। अन्यत्र शास्त्रों में बिन्दु का प्रमाण मूंग के दाने के बराबर कहा है "मुद्गमात्रोऽत्र विन्दुः इसी विषय में चरक शास्त्र में आगे लिखा है—

सवर्णास्तत्कृतावंशा बहूत्तरविषा भृशाः ॥

[चिकित्सा २३, १३८]

साँप जिस दाढ़ से डसता है, दंश स्थान का वर्ण भी वैसा ही हो जाता है। यदि बाईं ओर के नीचे के दाँत से डसे तो उसका रंग काला होगा। यदि ऊपर के दांत से डसे तो पीला होगा। इसी प्रकार दाहिनी नीचे की दाढ़ से डसा हुआ दंश लाल और ऊपर की दाढ़ का डसा हुआ श्याम वर्ण का होगा।

दंष्ट्राओं का जिस क्रम से वर्णन है उत्तरोत्तर उन दंष्ट्राओं से डसे जाने पर अपेक्षया विष की मात्रा भी अधिक होती है। अतएव ये उत्तरोत्तर दुःख वा कष्ट का साध्य होते हैं। अर्थात् बायें भाग की नीचे की दाढ़ की अपेक्षा बायें की ऊपर की दाढ़ और बायें जबाड़े के ऊपर की दाढ़ की अपेक्षा दायें भाग की नीचे की दाढ़, तथा दायें की नीचे की दाढ़ की अपेक्षा ऊपर की दाढ़ के दंश में विष अधिक होता है। इसी प्रकार चिकित्सा में भी अपेक्षया उसी प्रकार कठिनाई अधिक होती है।

पाठक इस बात का ध्यान अवश्य दें कि पहले मण्डली, दर्वी, राजिमान् आदि सर्पों के जाति भेद से जो दंशों का वर्णन कहा गया है उसे देह मिश्रित (शरीर में प्रविष्ट) विष में जानना चाहिये। जो यहां दंष्ट्रा भेद से रंग भेद कहा है उसे जब तक दंश स्थित (काटे हुए स्थान में ठहरा हुआ) विष है, तब तक जानना चाहिए।

सर्पविष चिकित्सकों का यह मतभेद है किसी भी भांति सर्प का विष जब रक्त में प्रविष्ट होता है तब वह रुधिरमें पहुंचते ही उससे मिलकर रक्ताणुओं की उत्पत्ति वा वृद्धिक्रम को रोक देता है जिससे रक्ताणुओं की संख्या कम होने लगती है।

परिणाम स्वरूप रक्त के छिछड़े से हो जाते हैं और उसमें जीवन की न्यूनता होने से थका हुआ सा प्रतीत होता है।

प्रसिद्ध डाक्टरों का मत इस विषय में यह है कि सर्प का शुष्क विष यदि मात्रा में एक चावल किसी के शरीर में प्रविष्ट होता है तो वह न्यून से न्यून १ लाख ५६ हजार (चावल) गुणा रक्त पर अपना प्रभाव डालता है अर्थात् अपने से इतने गुणे रक्त को प्रभावित वा दूषित करता है।

सभी प्रकार के सर्प विषों का वर्गीकरण यदि मनुष्य के शरीर के अवयवों पर होने वाले प्रभाव के अनुसार किया जाये तो उसे तीन मुख्य वर्गों में बांटा जा जा सकता है। प्रथम वात तन्तुओं पर प्रभाव डालते हैं। द्वितीय—प्रदाह जनक और खरास उत्पन्न करने वाले होते हैं। तृतीय—कीटाणु जनक अर्थात् रोगाणुओं से पूर्ण होते हैं। ये रोगाणु सर्प विष से रक्त प्रणाली में वृद्धि को प्राप्त होते हैं और रक्त में खमीर=सन्धान उत्पन्न करके रक्त के घटकों को नष्ट कर देते हैं अर्थात् इनको दूषित करने में प्रधान भाग लेते हैं।

वैद्य डाक्टरों का मतभेद होते हुए भी इस बात पर सबका ही एक मत प्रतीत होता है कि विष द्वारा होने वाले प्रभाव तथा उससे उत्पन्न लक्षण तीन ही प्रकार से वा तीन ही वर्गों में प्रकट होते हैं। उन वर्गों के वर्णन वा शैली में भले ही मत भेद हो, किन्तु यह तीन प्रशस्त वर्ग वात, पित्त और कफ का आयुर्वेद का प्रसिद्ध "त्रिदोष" सिद्धान्त ही है। जितने वात कारक सर्प हैं उनका लक्षण एक स्थान पर दर्वीकरों के लक्षण में ही आ जाता है। पित्तकारक सर्पों का लक्षण मण्डली सर्पों में और कफ कारक सर्पों का वर्णन राजिमान् सर्पों में आ जाता है। इनके विषय में पहले लिखा जा चुका है।

सर्प विष के सात वेग

महर्षि धन्वन्तरि जी ने सुश्रुत में लिखा है—तत्र सर्वेषां सर्पाणां विषस्य सप्त वेगा भवन्ति" सब सर्पों के विष के सात वेग (लहर) माने हैं हमारे शरीर में सात धातु हैं। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, और शुक्र इन सात धातुओं से हमारे शरीर का निर्माण होता है। ये धातुयें क्रमशः एक दूसरे के पीछे बनते हैं एक धातु को अपने से अगले धातु में परिणित होने के लिए निश्चित समय लगता है इनमें से प्रत्येक को दूसरे धातु से पृथक् करने के लिए एक कला होती है। सुश्रुत

में कहा है—

धात्वन्तरेषु याः सप्त कलाः संपरिकीर्तिताः ।
तास्वेकैकमतिक्रम्य वेगं प्रकुरुते विषम् ॥

धातुओं के बीच बीच में जो सात कलायें कहीं हैं, उनमें से एक एक को अतिक्रमण करके विष वेग को उत्पन्न करता है। जैसे एक धातु को अपने से अग्रिम धातु में जाने के लिए इन कलाओं को पार करना पड़ता है, इसी प्रकार सर्प विष को भी क्रमशः एक के पश्चात् दूसरी को अर्थात् प्रत्येक कला को पार करना पड़ता है। एक एक धातु में एक एक वेग के विचार से सात वेगों की उत्पत्ति होती है। जब रस और रक्त के बीच की कला का अतिक्रमण विष करता है तब वह प्रथम वेग कहाता है। रक्त और मांस की कला का अतिक्रमण करना दूसरा वेग कहलाता है। इसी प्रकार आगे के वेगों के विषय में भी समझिये। इसी विषय में सुश्रुतकार ने आगे लिखा है—

येनान्तरेण तु कलां कालकल्पं भिनत्ति हि ।
समीरणेनोह्यमानं तत्तु वेगान्तरं स्मृतम् ॥
कल्पस्थान ४-४१

अर्थात् वायु से प्रेरित हुआ विष जितने समय में मृत्यु रूप कला को पार करता है उतने समय को वेगान्तर कहा है।

मनुष्य तथा पशु आदियों में विष के वेगों के विषय में शास्त्रों में कुछ भिन्नता पाई जाती है। इस विषय में सुश्रुतकार ने आगे लिखा है:—

शूनाङ्गः प्रथमे वेगे पशुर्ध्यायति दुःखितः ।
लालास्रावो द्वितीये तु कृष्णाङ्गः पीड्यते हृदि ।
तृतीये च शिरोदुःखं कण्ठग्रीवं च भज्यते ।
चतुर्थे वेपते मूढः खादन् दन्तान् जहात्यसून् ॥
केचिद्वेगत्रयं प्राहुरन्तं चैतेषु तद्विदः ।
ध्यायति प्रथमे वेगे पक्षी मुह्यत्यतः परम् ॥
द्वितीये विह्वलः प्रोक्तस्तृतीये मृत्युमृच्छति ।
केचिदेकं विहङ्गेषु विषवेगमुशन्ति हि ।
(कल्पस्थानम् ४-४२-४५)

मनुष्य तथा पशु आदि में विष के वेगों के विषय में शास्त्रों में कुछ भिन्नता पाई जाती है। सर्प विष से दंशित पशु प्रथम वेग में दुःखी होकर शोक करता हैं; अङ्ग सूख जाता है। दूसरे वेग में अंग काला पड़ जाता है, मुख से लार स्राव होता है, अर्थात् लार बहाने लगती हैं और हृदय में वेदना होती है। तीसरे वेग में शिर में दर्द तथा कण्ठ और ग्रीवा टूटने लगते हैं। चौथे वेग में पशु कांपता है और मूढ़ हो जाता है और दाँतों को काटता पीसता हुआ प्राण छोड़ देता है। कई आचार्य पशुओं में तीन ही वेग मानते हैं। यदि पक्षी को सर्प काट जाता है तो प्रथम वेग में पक्षी चिन्ता करता है। और मूछित हो जाता है और दूसरे वेग में व्याकुल=बेचैन हो जाता है। तीसरे वेग में मर जाता है। कुछ आचार्य पक्षियों में विष का एक ही वेग मानते हैं।

"मार्जारनकुलादीनां विषं नातिप्रवर्तते

बिल्ली और नकुल=न्योला आदि पर सांप का विष अधिक प्रभाव नहीं करता। चरक शास्त्र में पशुओं में चार और पक्षियों में तीन वेग माने हैं।

फणदार=दर्वीकर सर्पविष के सात वेग

तत्र सर्वेषां सर्पाणां विषस्य सप्त वेगा भवन्ति।

तत्र दर्वीकराणां प्रथमे वेगे विषं शोणितं दूषयति, तत् प्रदुष्टं कृष्णतामुपैति: तेन काष्र्ण्यंपिपीलिका परिसर्पणमिव चाङ्गे भवति।

प्रथम वेग— दर्वीकर सांपों के प्रथमवेग में विष रक्त को दूषित करता है, इससे दूषित रक्त काला पड़ जाता है। इसलिये दंशित व्यक्तियों के त्वचा, नेत्र, नाखून, दाँत, मलमूत्र आदि सभी काले पड़ जाते हैं तथा उनमें रुक्षता आ जाती है। शरीर में चिऊँटियों के चलने के समान क्रिया प्रतीत होती है। वायु कुपित होने के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं।

द्वितीय वेग—द्वितीये मांसं दूषयति, तेनात्यर्थं कृष्णता शोफो ग्रन्थयश्चाङ्गे भवन्ति।

दूसरे वेग में विष मांस को दूषित करता है इससे शरीर में अत्यन्त कालापन सूजन और गांठें उत्पन्न हो जाती हैं।

तृतीयवेगः—तृतीये मेदो दूषयति, तेन दंश क्लेदः शिरोगौरवं स्वदेश्चक्षुर्ग्रहणं।

तीसरे वेग में विष भेद=चर्बी को दूषित करता है, इससे काटा हुआ स्थान सड़ने लगता है शिर में भारीपन होता है। पसीना आने लगता है नेत्र बन्द होने लगते हैं और दृष्टि मन्द पड़ जाती है।

चतुर्थवेगः—चतुर्थे कोष्ठमनुप्रविश्य कफप्रधानं दोषान् दूषयति तेन तन्द्रा प्रसेकसन्धिविश्लेषाः भवन्ति।

चौथे वेग में विष उदर में पहुँचकर कफ प्रधान दोषों को दूषित करता है, जिससे तन्द्रा, मुख से कफ का गिरना और सन्धि के जोड़ों में ढीलापन आ जाता है।

पञ्चमो वेगः—पञ्चमेऽस्थीन्यनुप्रविशति प्राणमग्निं च दूषयति तेन पर्वभेदो हिक्का दाहश्च भवति। वाक् भंगंशीतज्वरं च करोति।

पांचवें वेग में कण्ठ में सूजन हो जाता है और घुर-घुर करने लग जाता है, बोलना बन्द हो जाता है तथा शीत ज्वर वा अन्य कफ के विकार उपस्थित हो जाते हैं।

षष्ठो वेगः सप्तमश्चः—षष्ठे मज्जानमनुप्रविशति ग्रहणीं चात्यर्थं दूषयति तेन गात्राणां गौरवमतिसारोहृत्पीडामूर्छा च भवति सप्तमे शुक्रमनु प्रविशति व्यानं चात्यर्थं कोपयति कफं च सूक्ष्मस्रोतोभ्यः प्रच्यावयति, तेन श्लेमवर्ति प्रादुर्भावः कटिपृष्ठभङ्गसर्वचेष्टाविघातो लालास्वेदयोरतिप्रवृत्तिरुच्छ्वासनिरोधश्च भवति।

छटे और सातवें वेग में विष मज्जा में पहुँचता है और ग्रहणी को अत्यधिक दूपित कर देता है जिससे शरीर में भारीपन अतिसार द्वारा हृदय प्रदेश में पीड़ा और मूर्च्छा होती है विष शुक्र में पहुँचकर व्यान स्थान को अत्यधिक प्रकुपित कर देता है। रजिमान् सर्प के काटने से कफ कुपित होने के सभी लक्षण प्रकट होने लगते हैं। शरीर का श्वेत और जड़ावसन्न हो जाना विष का मन्दगति से चढ़ना तथा रोगी का शनैः शनैः चङ्गा हो जाना वा मर जाना हृदय और फुफ्फुस का निश्चेष्ट हो जाना श्वासोच्छवास बन्द होकर मृत्यु को प्राप्त होना ये लक्षण प्रकट होते हैं।

सर्पदंशित रोगियों की साध्य असाध्यावस्था-

इस विषय में महर्षि धन्वन्तरि जी सुश्रुत में लिखते हैं—

अश्वत्थदेवायतनश्मशान—
वल्मीकसन्ध्यासु चतुष्पथेषु ।
याम्ये सपित्र्ये परिवर्जनीया
ऋक्षे नरा मर्मसु ये च दष्टाः ॥

यदि किसी को पीपल वृक्ष के नीचे, देवस्थान, मन्दिर श्मशान, बल्मीक= दीमक की बाम्बी, सर्प के घर में, सन्ध्याकाल चौराहे, भरणी और मघा नक्षत्र में तथा मर्म स्थानों में सर्प काट जाये तो ऐसे रोगी की चिकित्सा करना व्यर्थ है। ये असाध्य होते हैं। ऐसे स्थानों के सर्प क्यों अधिक विषैले होते हैं? यह विषय विचारणीय है।

दर्वीकराणां विषमाशुघाती
सर्वाणि चोष्णे द्विगुणी भवन्ति ।
अजीर्णपित्ता तपपीडितेषु
बालप्रमेहिष्वथ गर्भिणीषु ॥

दर्वीकर=फणीधर सांपों का विष शीघ्र मृत्यु कारक होता है। सभी विष उष्ण काल में द्विगुण प्रभाव करते हैं। अजीर्ण रोगी पित्तरोगी, धूप से पीड़ित, बालक, प्रमेह रोगी, गर्भवती स्त्री, वृद्ध रोगी, क्षीण, भूखे, रुक्ष प्रकृति तथा भीरु व्यक्तियों पर और आकाश में बादल छा जाने पर सभी विषों का जोर बढ़ता है। इन दशाओं में विष अधिक प्रभाव करता है और असाध्य हो जाता है।

सुश्रुत संहिता में आगे चलकर कहा है—

शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति
राज्यो लताभिश्च न संभवन्ति ।
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो
विषाभिहतं परिवर्जयेत्तम् ॥४०॥
जिह्वासिता यस्य न केशशातो
नासावभङ्गश्च सकण्ठभङ्गः ।
कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशे
हन्वोः स्थिरत्वं च स वर्जनीयः ॥४१॥

वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्रा—
रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥
दंष्ट्रानिपाताः सकलाश्च यस्य
तं चापि वैद्यः परिवर्जयेत्तु ॥४२॥
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा
हीनस्वरं वाप्यथवा विवर्णम् ।
सारिष्ट सत्यर्थमवेगिनं च
जह्यान्नरं तत्र च कर्म कुर्यात् ॥४३॥

(कल्पस्थान अ० ३)

शस्त्र से कटने पर जिस विषवर्त के शरीर से रुधिर न निकले, कोड़ा, चाबुक आदि मारने से रेखा न पड़े तथा उसके ऊपर शीतल जल डालने से रोंगटे न खड़े हों उस सर्प.दष्ट को असाध्य समझ कर त्याग देना चाहिए ।

जिसकी जीभ श्वेत हो गई हो, बाल झड़ने लग गये हों, नाक बैठ गई हो, आवाज रुक गई हो, दंश स्थान पर कृष्ण रक्त सहित सूजन हो और बजाड़ी स्थिर =बन्द हो गई हो, वह असाध्य है ।

मुख से जमा हुआ कफ निकले, मुख, नाक, गुदा और मूत्र मार्ग से रक्त निकलता हो, दंश, स्थान पर सब दाँतों का पूरा २ चिह्न हो ऐसे रोगी को भी वैद्य छोड़ दे ।

जो रोगी पागल हो, अति उपद्रवों से पीड़ित हो, स्वर मन्द पड़ गया हो या रोगी के शरीर का रंग बदल गया हो, मृत्यु के चिह्न निश्चित रूप से उपस्थित हो गये हों जिसमें वेग=लहर न आये, वह रोगी मरेगा ही, उसकी चिकित्सा करना व्यर्थ है ।

"मण्डली सर्प-विष के सात वेग"

प्रथम वेग—मण्डली सर्पों का विष रक्त को दूषित करता है । यह दूषित रुधिर पीला हो जाता है । इससे जलन तथा सब अंगों में पीलापन हो जाता है ।

दूसरा वेग—इस में विष मांस को दूषित करता है । इससे मांस में भी पीलापन और जलन बढ़ जाती है और काटे हुये स्थान पर सूजन हो जाती है ।

तीसरा वेग—इस में विष मेद (चर्बी) को बिगाड़ता है । इससे दर्विकर सांप

की भांति आंखों से दिखाई न देना, प्यास, काटे हुये स्थान का गीला होना, सड़ना तथा पसीना आते है।

चौथा वेग—इस वेग में विष (उदर) में पहुँचकर ज्वर (बुखार) को पैदा करता है।

पंचम वेग—पांचवें वेग में सारे शरीर में तीक्ष्ण दाह (जलन) पैदा होती है।

छटे और सांतवें वेग के लक्षण दर्विकर अर्थात् फनदार सांप के वेग के समान हीं होते हैं।

मण्डली सांप के काटने पर दंशित स्थान पर जलन खरास पीड़ा इत्यादिं आरम्भ से अन्त तक रहती है। दाहयुक्त कष्ट प्रतीत होता रहता है दंशित स्थान से काले रंग का रुधिर बहता है। दंशित स्थान 'मुञ्दरदार होकर सड़कर गिरने लगता है। इस विषय में हम पहिले लिख चुके हैं। मण्डली पित्त प्रकृति के सर्प होते अतः पित्त के सभी लक्षण प्रकट होते हैं। शरीर से अधिक रक्त निकलने के कारण अथवा हृदय तथा फुफ्फुस की गति के बन्द होने के कारण रोगी की मृत्यु हो जाती है।

राजिमान् सर्प-विष के सात वेग

प्रथम वेग—प्रथम वेग में इनका विष रक्त को दूषित करता है। दूषित रक्त पाण्डुरङ्ग (श्वेत) सा हो जाता है। अंग भी श्वेत हो जाते हैं। रोम हर्ष हो जाता है। त्वचा श्वेत होने से मनुष्य सारा श्वेत ही दिखाई देता है।

दूसरा वेग—दूसरा वेग मांस को दूपित करता है। अतः पाण्डुना अधिव वढ़ जाती है। सारा शरीर जड़ और शून्य हो जाता है। सिर में सूजन हो जाती है। अंग अकड़ जाते हैं। दंश स्थान पर सूजन हो जाती है।

तीसरा वेग—विप मेद (चर्वी) को दूषित करता है। इससे नेत्रों में खुजली होती है। आंखें मिचती हैं और अन्धेरी आती है। चक्षु और नासिका में पानी आता है। पसीना आता है, दंश स्थान सड़ता है और अंधेपन का अनुभव होता है।

चौथा वेग—चौथे वेग में विष उदर में प्रविष्ट होकर मन्यास्तम्भ और शिर में भारीपन उत्पन्न करता है इससे मुख से राल जलयुक्त कफ वा गाढ़ा कफ

निकलता है। कभी रक्त मिला हुआ भी कफ निकलता है।

पांचवां वेग—इसमें कण्ठ सूंज जाता है और घुर-घुर करता है। वाणी रुक जाती है। शीत ज्वर हो जाता है। अन्य सभी कफ के विकार प्रकट होते हैं।

छठे और सातवें वेग में दर्वीकर अर्थात् फणीयर सर्प के समान सभी लक्षण होते हैं।

राजिमान् सांपों के काटने पर शरीर जड़ और शून्य हो जाता है। कफ के सभी लक्षण देखने में आते हैं। रोगी शनैः शनैः चङ्गा हो जाता है अथवा मर जाता है। हृदय में पीड़ा होना वा हृदय की गति बन्द होना इसका प्रथम लक्षण है और फुपफुस का निश्चेष्ट होना इसका अन्तिम लक्षण है। हृदय की गति बन्द होने से श्वास की क्रिया बन्द हो जाती है। पुनः मृत्यु हो जाती है।

सर्प विष की चिकित्सा

सर्प के काटने पर प्रत्येक चिकित्सक के लिये यह आवश्यक है कि वह ऐसा यत्न करे जिससे सर्प दंशित रोगी के शरीर पर विष का कोई हानिकारक प्रभाव न पड़े तथा उसके स्वास्थ्य में भी विकार उत्पन्न न हों।

निम्नलिखित उपाय चिकित्सक को सावधानी से करने चाहिये।

यदि सांप के काटते ही रोगी तुरन्त चिकित्सक के पास पहुंच जाये और सर्प ने हाथ वा पैर पर काटा हो तो काटे हुये स्थान से चार अङ्गुल ऊपर बंध लगा देवें। इसी विषय में महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं—

सर्वैरेवावितः सर्पैः शाखादष्टस्य देहिनः।
दंशस्योपरि बद्धनीयादरिष्टाश्चतुरङ्गुले ॥

सभी सांपों के काटने पर सर्व प्रथम मनुष्य के हाथ-पैर और यदि शाखाओं में काटा हो तो काटे हुये स्थान से चार अंगुल ऊपर एक अरिष्टा अर्थात् बन्ध बान्धना चाहिये। यदि सांप हाथ वा पैर की अंगुली पर काटे तो एक बन्ध अंगुली के मूल में बांधे। एक बन्ध पर भरोसा नहीं करना चाहिये दूसरा बन्ध आठ दश अंगुल के अन्तर पर बान्ध देना चाहिये। इसी प्रकार तीसरा बन्ध भी इतने ही अन्तर पर बान्ध देना चाहिए। बन्धन इतनी दृढ़ता से लगाने चाहियें कि वहां का रक्त संचार अवश्य रुक जाये। क्योंकि सर्प के काटने से सर्व प्रथम विष

रक्त में ही प्रविष्ट होता है। रक्त संचार के बन्ध होने से विष सारे शरीर में नहीं फैल सकता और बन्धन लगाने के पीछे लगभग आध घण्टा अन्य चिकित्सा के लिये मिल जाता है। किन्तु बन्ध लगाने का कार्य सर्प के काटने से १० मिनट के अन्दर-अन्दर हो जाना चाहिये। क्योंकि १०-१५ मिनट में ही विष सारे शरीर में फैल जाता है।

इसलिये इससे पहिले ही विष को ऊपर चढ़ने से रोक दिया जाये तो बन्ध बान्धने से लाभ होता है और शीघ्र ही अन्य चिकित्सा द्वारा दंशित स्थान पर ही विष के प्रभाव को नष्ट कर दिया जाये तो शेष शरीर में विष न फैल सकेगा और उसे किसी प्रकार की हानि करने का अवसर न मिलेगा। इसीलिये सभी चिकित्सक बन्ध बांधने के पक्ष में हैं और सर्व प्रथम इसी क्रिया को करते हैं। बन्ध आध घण्टे से अधिक नहीं बांधना चाहिये। क्योंकि इसके नीचे के भाग मृतप्राय: हो जाते हैं। कई बार तो जिस स्थान पर बन्ध बांधते हैं। उसी स्थान पर ऐसा विकृत व्रण हो जाता है जिसकी चिकित्सा असाध्य हो जाती है। बन्ध बांधने के पश्चात् विष पीछे की ओर वेग से लौटता है। अत: बन्ध बांधने के पीछे लौटे हुए विष को रक्त के साथ तुरन्त ही बाहर निकाल देना चाहिये। छुरी से चीरना, दहकते कोयले से जलाना, इत्यादि क्रियायें में बन्ध बांधने के पश्चात् यदि तुरन्त कर दी जायें तो विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है। बन्ध बांधने से पहिले यह देख लेना चाहिये कि रक्त में मिलकर विष कहां तक पहुँचा है। कभी ऐसी भूल न कर बैठें कि विष ऊपर चढ़ गया हो और बन्ध नीचे बांध दिया हो। इससे रोगी के प्राण तक जा सकते में। अत: दंशित स्थान से ५-६ अंगुल ऊपर सूत की डोरी आदि से ऐसी शक्ति से बन्ध बांधें कि रक्त की गति सर्वथा रुक जाये। अच्छे बन्ध के लक्षण भी ये ही हैं कि नीचे काट कर देखें कि खून काला वा नीला होगा, बन्धन से ऊपर का भाग काट कर देखें तो रक्त लाल होगा। बन्ध बाँधने के पश्चात् सावधानी से देखें कि बन्ध के निकट ही रोगी के बाल सो तो नहीं गये। क्योंकि जहाँ विष बालों की जड़ में जाता है वहां बाल सो जाते है और विष के आगे बढ़ते ही पीछे के बाल खड़े हो जाते हैं और आगे बाल जहां विष पहुँचता है सो जाते हैं।

दूसरा लक्षण यह है कि जहां-जहां विष चढ़ता है वहाँ वहां नसों का रंग नीला होता जाता है। नसों का नीला रङ्ग तथा सोये बाल यह स्पष्ट प्रकट कर देते हैं कि विष कहाँ तक चढ़ा हुआ है।

तीसरा लक्षण यह है कि जहां विष होता है वहां काटकर देखने से दुगन्धयुक्त काला वा नीला वा पीला लहू निकलता है। जहाँ विष नहीं होता वहाँ शुद्ध लाल रङ्ग का खून निकलता है :—

बन्ध किस वस्तु से बांधना चाहिये

इस विषय में महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं।

प्लोतचर्मान्तवल्कान्तं मृदुनाऽन्यतमेन वं ।
न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ॥

(सुश्रुत कल्पस्थान ५।४)

अरिष्टा अर्थात् बन्धन कपड़े की लीर अर्थात् धोती वा अंगोछे की किनारी, चमड़े की रस्सी, वृक्ष की अन्तः छाल जैसे सन की रस्सी सूंतली, डोरी, ऊन की रस्सी अथवा अन्य कोई भी कोमल वस्तु जैसे रबड़ की नाली जो भी वस्तु उस समय सुलभ हो उसे लेकर बन्ध लगा देना चाहिये। महर्षि धन्वन्तरि जी भी यही मानते हैं कि बन्धन से रोका हुआ विष ऊपर नहीं चढ़ता है। ऐसा ही प्रतीत होता है कि यह बन्धन बांधने की प्रणाली परम्परा से प्राचीन काल से चली आई है। साधारण जन भी इसको भली भांति जानते हैं। किन्तु प्रायः प्रथम तो वन्ध वाँधते नही यदि बांधते हैं तो इतना ढ़ीला बाँध देते हैं जिसके बन्धनों से कोई लाभ नही होता। जिस व्यक्ति को सर्प काट जाये उसे स्वयं भी बन्ध वान्ध लेना चाहिये। बन्ध के बांधने से विष का शरीर के अन्य अवयवों में फैलना तो रुक जाता है किन्तु विष बन्धनों से नीचे अथवा दंशित स्थान पर शरीर के अन्दर ही विद्यमान रहता है। उस विष को औषधि उपचार द्वारा तुरन्त ही बाहर निकालने का यत्न करना चाहिये। परन्तु सर्प ऐसे स्थान पर काट जाये कि वन्धन भी न लगाया जा सके, न उसे काट कर पृथक् किया जा सके जैसे मुख, पृष्ठ, मूत्रेन्द्रिय आदि मर्म स्थान, तो ऐसी अवस्था में महर्षि धन्वन्तरि जी लिखते हैं:—

दहेद् दंशमथोत्कृत्य यत्र बन्धो न जायते ॥
प्राचूषणच्छेदः दाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥

सुश्रुत कल्प स्थान ५।५

जहाँ पर बन्ध न बाधा जा सके वहां दंशित स्थान को काटकर अग्नि से जला दें। क्योंकि सभी सांपों के काटने पर आचूषण—चूसना, छेदन-काटना, दाह-जलाना इन तीनों क्रियाओं का विधान मिलता है। प्रायः सभी चिकित्सक इन क्रियाओं को करते हैं। किन्तु मंडली साँप के काटने पर दाह—जलाने की क्रिया कभी भूलकर भी नही करनी चाहिये क्योंकि उसका विष पित्त को प्रकुपित करने वाला होता है। महर्षि धन्वन्तरि जी ने भी उसके विषय में लिखा है।

अथ मण्डलिना दष्टं न कथञ्चन दाहयेत्।
सपित्तबाहुल्याद्विषाद् दंशो दाहाद्विसर्पते ॥

सुश्रुत कल्पस्थान ५। ७॥

मण्डली सांप के काटे हुये व्यक्ति दाह न करें क्योंकि वह मंडली से दंशित विष पित्त की अधिकता के कारण जलाने से अधिक फैलता है। मण्डली सर्प को छोड़कर अन्य सर्पों के काटने पर बन्ध लगाने के पश्चात् डसे हुये स्थान पर किसी तेज चाकू से मांस युक्त त्वचा का भाग काट डालना चाहिये। यदि मर्म स्थान न हो और किसी विषैले सर्प ने काटा हो तो लगभग एक इञ्च गहरा मांस का टुकड़ा काट देना चाहिये और उस क्षत—जख्म पर दहकता हुआ कोयला अथवा गर्म लौह रखकर जला दें। यदि किसी को विषैले सर्प ने हाथ या पैर की अंगुली पर काटा हो तो काटने के दश मिनट बाद तक भी काटा जा सकता है। किन्तु काटने का लाभ तब होता है जबकि काटने पर बन्ध बान्ध दिया हो और अंगुली को छोड़कर विष शरीर के अन्य भाग में न गया हो।

इसी विषय में चरक शास्त्र में लिखा है—

दंशात्तु विषं दष्टस्याविसृतं वेणिकां भिषक् बद्ध्वा
निष्पीडयेद् भृशं दंशमुद्धरेन्मर्मवर्जं वा ॥

चरक, चिकित्सा स्थान २३। ३७॥

अर्थात् चिकित्सक को चाहिये सर्व प्रथम दंशित पुरुष के काटे हुए स्थान के ऊपर रस्सी का बन्ध बान्ध दें। किन्तु यह क्रिया दंश स्थान से शरीर में विष फैलने से पूर्व ही करनी चाहिये। दूसरी क्रिया मर्म स्थान को बचाते हुये दंशस्थान

को काटकर निकाल फेंके। यदि स्थान काटने योग्य न हो बन्ध बान्धने के पश्चात् दंश के चारों ओर से निष्पीड़न करना चाहिये। इससे विष बाहर निकल जाता है। मर्मस्थान वा सन्धिस्थान का यदि दंश हो तो दंशस्थान को काटकर नहीं फेंकना चाहिये इससे मृत्यु की संभावना होती है अथवा अङ्ग की विकलता होती है। दंशित स्थान को तेज चाकू से चीरकर और भली-भांति दबा-दबा कर विष मिले हुये रक्त को बाहर निकाल देना चाहिये। जब तक काला, पीला नीला, लहू निकलता रहे तब तक समझो कि खून में विष मिला हुआ है। तब तक दबा-दबा कर निकालते ही रहना चाहिए। विष मिले हुये हुये खून से दुर्गन्ध (बदबू) आती है और वह अग्नि पर डालने से चिट-चिट करता है जब रक्त लाल रंग का आने लगे और उसमें किसी प्रकार की दुर्गन्ध न हो और अग्नि पर डालने से चिट-चिट शब्द भी न हो तब रक्त निकालना बन्द कर दें और समझ लें कि विष निकल गया है। इसी को निष्पीड़न कहते हैं। सर्प विष चूस कर शिङ्गी जोंक आदि लगवाकर भी निकाला जा सकता है।

रक्त के चूसने व निकालने का विधि

चरक शास्त्र में लिखा है—

तं दंशं वा चूषेन्मुखेन यवचूर्णपांशुपूर्णेन ।
प्रच्छन्नवेधजलौकश्रृङ्गैः स्राव्यं ततो रक्तम् ॥

चरक, चिकित्सा साधन २३ । ३७ ॥

मुख में जौ का आटा भरकर चतुर वैद्य उस दंश स्थान के विष को चूसलें। चूसने से वह विष जौ के आटे अथवा मिट्टी में आ जायेगा उसे थूक दें। यह क्रिया बार-बार करें, किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि चूसने वाले के मुख में व्रण—जख्म आदि न हों। विष के चूसने से पहले मुख के अन्दर किसी विषनाशक औषधि का जैसे गोघृत या अमृतघृत का लेप जरूर कर लेना चाहिये। फिर जौ का आटा आदि मुख में भरके विष चूसें। चूसने के पश्चात् भी विषनाशक औषधि से कुल्ला कर लेना चाहिये। जैसे शिरीष (सिरस), कचनार, कोयल इत्यादि के पत्तों के क्वाथ वा स्वरस से कुल्ला करें। चूषण करने से पहले तेज चाकू से पच्छ अर्थात् दंश स्थान पर (+) इस प्रकार का चिह्न (चीरा) लगा देना चाहिये।

यदि मांसल स्थान हो तो पच्छ और गहरा लगा देना चाहिये। यदि शल्य क्रिया में कुशल वैद्य हो तो दंश स्थान से मिले हुये शिरा को चार अंगुल ऊपर से काट देवें, जिससे दंश स्थान का विष भली-भांति निकल जाये किन्तु शिरा काटने की क्रिया सिद्धहस्त वैद्य वा डाक्टर को ही करनी चाहियें। शिरा काटने की क्रिया यदि न की जाये तो किसी चाकू से उपरिलिखित (+) इस प्रकार का चिह्न करके चूसना चाहिये। काटे हुये स्थान पर गर्म जल से धोकर जख्म पर नमक डाल-डाल कर उस पर गर्म पानी से ही तरड़े लगाते रहें। जिससे खून का बहना बन्द न हो और रक्त के साथ विष भी निकल जाये। सांप के काटे हुये स्थान से विषैला रक्त निकालना और विष को आगे न बढ़ने देना ये दोनों क्रियायें रोगी के प्राण बचाने वाली हैं। उनके अतिरिक्त दंश स्थान पर शिङ्गी लगवाकर अथवा पम्प से वा जोंक लगवाकर विषाक्त रक्त निकाला जा सकता है। विषाक्त रक्त निकालने के ये विधि प्राचीन काल से ही चले आते हैं और चिकित्सक लोग आज-कल भी ये विधि करते हैं। ये सब क्रियायें शरीर में विष फैलने से पूर्व ही करने से लाभ होता है। शरीर में विष फैलने के पीछे इन क्रियाओं के करने से कोई विशेष लाभ देखने में नहीं आता।

दंशित स्थान को चीरने और विषयुक्त रुधिर निकालने के पीछें अनेक विषघ्न लेप किये जाते हैं। किन्तु ये सब प्रारम्भिक चिकित्सायें हैं। प्रायः चिकित्सक को ये क्रियायें करने का अवसर ही नहीं मिलता। उसके पास रोगी प्रायः बहुत विलम्ब से पहुंचते हैं। इसलिये उपर्युक्त बन्ध लगाना, काटना, चूसना, जलाना आदि क्रियायें रोगी स्वयं वा उसका कोई साथी कर सकता है और रुधिर निकलने के पीछे क्षतस्थान (जख्म) पर पट्टी बांध देना चाहिये। समीप के स्थान पर कोई चतुर चिकित्सक हो तो उसे बुला लें अथवा रोगी को अविलम्ब उसके पास ले जावें। यदि कोई चिकित्सक न मिले तो जो उपाय वा औषधि लिख रहे हैं उनसे बड़ी सावधानी से चिकित्सा करें। अनेक अज्ञानी चिकित्सक कई दिन तक बन्ध बान्धे रखते हैं। किन्तु बान्धने के पीछे उपयुक्त चिकित्सा हो जाये तो आध घण्टा वा घण्टा पीछे बन्ध बान्धने की आवश्यकता नहीं रहती। बन्ध कब खोलें, यह जानना आवश्यक है। सर्प का विष मनुष्य के रक्त को बिगाड़ देता है। अतः जब तक नीला, काला, पीला रक्त अथवा विष मिला श्वेत जल सा लहू निकलता है तब तक भूलकर भी बन्ध नहीं खोलना चाहिये। ऐसी भूल करने से बनी बनायी बात

बिगड़ जाती है। अतः जब नीला काला, पीला आदि विषयुक्त रक्त निकलना बन्द हजाये और विशुद्ध लाल रंग का रक्त निकलने लगे तभी बन्ध खोल देने चाहियें और घाव पर विषनाशक लेप कर देना चाहिये।

सर्प दंश चिकित्सा

अब तक सर्प दंश की स्थानीय चिकित्सा वा सामान्य औषध लिखी थी। अब सभी प्रकार के सर्पों की वेगों के अनुसार चिकित्सा लिखते हैं।

दर्वीकर वा फणिसर्पों के विष की वेग अनुसार चिकित्सा—

फणिनां विषवेगे तु प्रथमे शोणितं हरेत्।
द्वितीये मधुसर्पिभ्यां पाययेतागदं भिषक् ॥

सुश्रुत कल्प ० ५,२० ॥

दर्वीकर अर्थात् फणों वाले सापों का प्रथम विष वेग में 'रक्तमोक्षकरायणम्' रक्त मोक्षण की विधि इसी प्रकार की है।

किसी तेज शस्त्र से चीरा लगाकर अथवा सिङ्गी लगवाकर, जोंक लगवाकर, चुसवा कर विषैले रक्त को भली भांति निकाल देना चाहिये। इस विषय में पहले भी लिखा जा चुका है। चरक शास्त्र में भी इसी प्रकार लिखा है—

रक्ते विष प्रदुष्टे दुष्येत्प्रकृतिस्ततस्त्यजेत्प्राणान्।
तस्मात्प्रघर्षणैरसृग्वर्तमानं प्रवर्त्यं स्यात् ॥

(चिकि० २३।४०)

रक्त के विष से दूषित हो जाने पर रोगी की प्रकृति भी दूषित हो जाती है। परिणाम यह होता है कि प्राणी की मृत्यु हो जाती है। अतः देह में चक्कर मारते हुये विषयुक्त दूषित रक्त को प्रघर्षण द्वारा प्रवृत्त करना चाहिये। यदि पछने लगाने और शिरावेधन आदि क्रियाओं से भी रक्त प्रवृत्त न हो तो निम्नलिखित चूर्ण पछने लगाये हुये स्थान पर मलना चाहिये।

मलने का चूर्ण

त्रिकटुगृहधूमरजनीपञ्चलवणाः सवार्ताकाघर्षणम् ॥

(चिकि० २३।४१)

सोंठ, काली मिर्च, पीपल, घर का धूवां, हल्दी और पांचों नमक, बड़ी कटहली के बीज इन सबको समान मात्रा में लें बारीक पीस कपड़छान करके दंश स्थान पर पछने लगाकर घर्षण करना चाहिये, इससे विष के कारण अप्रवृत्त रक्त प्रवृत्त होकर भली भान्ति बाहर निकलने लगेगा। फणियर सांप विष के द्वितीय वेग में मधु और घी के साथ विष नाशक अगद (औषध) मिलाकर रोगी को पिलायें। मधु और घी जब किसी रोगी को मिलाकर दें तो सदा यह ध्यान रखें कि ये दोनों सम्भाग न हों। घृत यदि एक तोला हो तो मधु इससे दुगुना दो तोला होना चाहिये। महर्षि धन्वन्तरि जी ने सभी प्रकार के विषयों में महा अगद का प्रयोग करना लिखा है।

त्रिवृद्विशल्ये मधुकं हरिद्रे, रक्ता नरेन्द्रो लवणश्च वर्गः।
कटुत्रिकं चैव सुचूर्णितानि शृङ्गे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥६१॥
एषोऽगदो हन्ति विषं प्रयुक्तः पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगैः।
अवीर्यवीर्यो विषवेगहन्ता महागदो महाप्रभवः ॥६२॥

अर्थात् त्रिवृत् (नीशोथ) विशल्या इसका अर्थ कुछ विद्वान् कलिहारी और कोई (दन्ती) जमालगोटे की जड़ मानते हैं कल्हण मिश्र ने काष्ठ पाटला माना है। मेरे विचार में विशल्यकरणी अर्थात् संजीवनी लें तो ठीक है। मुलहठी, दोनों हल्दी (अर्थात् खाने की हल्दी तथा दारुहल्दी) मंजीठ, अमलतास, पांचों नमक, त्रिकुट, (सोंठ, मरीच, पीपल) इन सब को समान भाग लेकर बारीक पीस कर कपड़छान करें और मधु मिलाकर शीशी या गोश्रृङ्ग के बने हुये पात्र में भर दें। संभव है इससे कुछ विशेष गुण वृद्धि की सम्भावना हो। इसी अगद को खिलाते भी हैं तथा अंजन, लेप, नस्य द्वारा भी प्रयोग करते हैं। यह सब प्रकार के विषों का नाश करने वाला अगद है। इसलिये इस का नाम महा अगद है।

दूसरा प्रयोग संजीवन अगद—

लाक्षा हरेणुर्नलदं प्रियङ्गु, शिग्रुद्वयं यष्टिकपुष्पिकाश्च ॥७३॥
चूर्णीकृतोऽयं रजनीविमिश्रो सर्पिर्मधुभ्यां सहितो निषेयः।
शृंगे गवां पूर्ववदापिधानस्ततः प्रयोज्योऽञ्जननस्यपानैः ॥७४॥

संजीवनो नाम गतासुकल्पानेषोऽगदो जीवयतीह मर्त्यान् ॥

हल्दी, लाख, हरेणु, खश, प्रियंगु, दोनों सोहंजना, मुलहटी, बड़ी इलायची, इन को सम भाग लेकर पीस लें शहद और घी मिलाकर बोतल या गोभृङ्ग में भर दें तथा बन्द कर दें। आवश्यकता पड़ने पर अंजन नस्य और पीने के लिये प्रयोग करें। यह विष के कारण मृतप्राय: व्यक्ति को जीवित कर सकता है। मेरे विचार में इस वेग में क्या सभी अवस्थाओं में अमृत घृत पिलाना अत्यन्त लाभदायक है। जिसके विषय में अन्यत्र विस्तार से लिखा गया है।

आयुर्वेद शास्त्रों में रक्त को चूस कर निकालना लिखा है। महर्षि चरक लिखते हैं।

आचूषणमानयनम्

चूसने से थोड़ा फैला हुआ विष दंश स्थान की ओर खिचता है और दंश स्थान से बाहर की ओर बलात् खींच लिया जाता है। विषाक्त रक्त को चूसने आदि क्रियाओं के द्वारा बाहर निकाल देना चाहिये। चरक शास्त्र में लिखा है—

रक्ते विप्रदुष्टे दुष्येत्प्रकृतिस्ततस्त्यजेत् प्राणान्।

चिकि० २३।३६॥

रक्त के विष से दूषित होने के कारण रोगी की प्रकृति दूषित हो जाती है। उसका परिणाम यह होता है कि दंशित प्राणी की विष के वेग के कारण मृत्यु हो जाती है। अतः प्रथम वेग में विषाक्त रक्त को निकालने में ही रोगी प्राणी का कल्याण है। फणियर क्या सभी प्रकार के सर्प के वेग में रक्त निकालने की क्रिया तो अवश्य करनी पड़ती है।

नस्य कर्माञ्जने युञ्ज्यात्तृतीये विषनाशने।
वान्तं चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागूमथ दापयेत् ॥२१॥
शीतोपचारं कृत्वाऽऽदौ भिषक् पञ्चमषष्ठयोः।
पाययेच्छोधनं तीक्ष्णं यवागूं चापि कीर्तिताम् ॥२२॥ कल्प०

फणियर सांपों के तीसरे वेग में विषनाशक नस्य-नसंवार सुंघानी चाहिये। तथा आंखों में विषनाशक अञ्जन डालना चाहिये।

मण्डली सर्पों के तीसरे वेग में 'तृतीये शोधितं तीक्ष्णैः यवागूं पाययेद्धिताम्' अर्थात् तीक्ष्ण औषधियों से विरेचन कराकर पूरा शोधन होने पर विषनाशक यवागू पिलावें। नस्य अञ्जन और यवागू के योग आगे लिखूंगा।

राजिमान् सर्पों के तृतीये वेग में जो व्यवहार दर्वीकर सर्पों के वेग में करने का विधान है वही अर्थात् विषनाशक नस्य और अञ्जन का प्रयोग करें।

फणियर सांपों के चौथे वेग में विषनाशक यवागू पीने को देवे और राजिमान् सर्पों के चौथे वेग में भी यही यवागू देनी चाहिये। इसी प्रकार मण्डली सर्पों के चौथे वेग में करना चाहिये।

फणियर सांपों के पांचवें छठे वेग में शीतल उपचार करे, फिर तीक्ष्ण औषधियों से विरेचन करवा कर विषनाशक यवागू पिलावे। मण्डली सर्प के पांचवें वेग में उपयुक्त क्रियायें करनी हैं। छठे वेग में काकोली आदि मधुर गुण-वाली औषधी पिलावें। राजिमान् सर्पों के पांचवें वेग में भी फणियर सर्पों के समान चिकित्सा करनी चाहिये। छटे वेग में तीक्ष्ण अञ्जन का प्रयोग करना चाहिये।

सप्तमे त्ववपीडेन शिरस्तीक्ष्णेन शोधयेत्।
तीक्ष्णमेवाञ्जनं दद्यात् तीक्ष्णशस्त्रेण मूर्ध्नि च ॥२३॥ कल्प०
कृत्वाकाकपदं चर्मसासृग्वापिशितं क्षिपेत् ॥

फणियर के सातवें वेग में तीक्ष्ण अवपीड़न नस्य से और तीक्ष्ण ही अञ्जन लगाकर शिर का शोधन करें।

मण्डली सर्पों के सातवें वेग में विषनाशक अगद अवपीडन अर्थात् संशोधन के लिये उत्तम है। इसी प्रकार राजिमान् के सातवें वेग में अवपीडन करने वाली औषधियों का सेवन करावें जिससे नष्ट संज्ञा (बेहोशी) दूर हो जावे॥

वेग के अनुसार इन तीनों प्रकार के सर्पों की चिकित्सा में कुछ अन्तर है। फ़णियर की चिकित्सा में चौथे वेग में वमन कराते हैं, किन्तु मण्डली और राजिमान् की चिकित्सा में दूसरे वेग में वमन कराते हैं। क्योंकि मण्डली सर्प का विष पित्त प्रधान होता है और राजिमान् का कफ प्रधान होता है। दोष के अनुसार ही शास्त्र-कारों ने यह भेद किया है। दर्वीकर सर्प के सातवें वेग में तीक्ष्ण शस्त्र से मूर्द्धा अर्थात् शिर पर काक के पञ्जे के समान चिह्न करके लाजा चर्मादि भरने की क्रिया

लिखी है। कोई-कोई शिरा भेदन की क्रिया भी करते हैं। किन्तु यदि बालक, वृद्ध (बूढ़े) या गर्भवती स्त्री को सर्प ने काटा हो तो उनका शिरोभेदन (फसल खोद कर) रक्त नहीं निकालना चाहिये। किसी भी मृदु उपाय से विष नष्ट करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जिनकी पित्त प्रकृति हो उनका भी रक्त नहीं निकालना चाहिये। अनेक अनुभवी तथा सर्प चिकित्सकों का यह मत है यदि वह पित्त प्रकृति वाले व्यक्ति को काट खावे तो विष का वेग द्विगुण होता है। अतः उसका रक्त न निकालकर शीतल उपचार करना अत्यन्त हितकारी है। मेरा अपना भी यही अनुभव है। हमारे प्रान्त में मण्डली सर्प का बाहुल्य है। अनेक रोगी मण्डलियों से दंशित मेरे पास आते हैं। मैं उनकी शीतल उपचार से ही चिकित्सा करता हूँ। ईश कृपा से मुझे सदैव ही इसमें सफलता मिली है। अनेक वैद्य और डाक्टर बिना विचारे ही शिराभेदन कर चीरा लगाकर प्रथम रक्त निकालने का यत्न करते हैं। कई चिकित्सक तो बहुत अधिक मात्रा में शरीर का रक्त निकाल डालते हैं। इसी से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

हमारे प्रान्त में एक सर्प विष चिकित्सक ने अपने सगे पुत्र को मण्डली सर्प के काटने पर चीरा लगाकर यही रक्त निकालने की प्रक्रिया की। शरीर से रक्त अधिक निकल गया उसके यत्न करने पर भी रक्त का बहना बन्द नहीं हुआ। इसी से उसकी मृत्यु हो गई। अतः मण्डली सर्प के काटने पर किसी पित्त-प्रकृति वाले व्यक्ति का रक्त न निकाल शीतल उपचार ही अच्छा है। इसी प्रकार जैसे मैं पहले लिख चुका हूं—किसी बूढ़े बालक या गर्भवती स्त्री का रक्त न निकालें यदि निकालना ही पड़े तो अत्यल्प मात्रा में निकालें। नहीं तो मृदु उपचार ही अच्छा है।

चिकित्सा करते समय दोषों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये। यदि दर्वीकर सर्प ने काटा हो तो वात दोष कुपित होने से वात के तथा वात के उपद्रवों को शांत करने वाली औषधियों का सेवन करना चाहिये। उसी प्रकार मण्डली सर्प के काटने पर पित्त और पित्त के उपद्रवों को शांत करने वाली औषधि का सेवन करना चाहिये। यदि राजिमान् सर्प ने काटा हो तो कफ और कफ के उपद्रवों को शान्त करने वाली औषधियों का सेवन करना चाहिये। फणियर (दर्वीकर) सर्प के काटने पर शरीर का रंग विष के प्रभाव से बिगड़ गया हो, शरीर में वेदना और सूजन हो तो उसका रक्त तुरन्त निकालना चाहिये। यदि दंशित प्राणी भूखा हो

अथवा वात के उपद्रव हों तो घी, दूध, शहद आदि पिलाना चाहिये। मण्डली सांप के काटने के कारण प्यास, दाह, मूर्च्छा आदि पित्त उपद्रव हों, तो चन्दन, उशीर आदि शीतल पदार्थों का स्पर्श लेप तथा ठण्डे जल से स्नान अथवा ठण्डे जल में मिट्टी भिगोकर लेपन आदि क्रिया करें। पित्त नाशक औषधियों का ही सेवन करावें।

सर्पदंश चिकित्सा

सर्प विष की चिकित्सा में बहुत वर्षों के अनुभव के बाद जिस औषधि को सब औषधियों में सबसे अधिक प्रभावशाली हमने पाया है, वह अमृता नाम की बूटी है। इसको नाकुली भी कहते हैं। महाराष्ट्र में इसको "नाय" नाम से जानते हैं। वहाँ लोकोक्ति प्रसिद्ध है "नाय सब दुःखों की माय"। इसकी प्राप्ति वा ज्ञान हमें बड़ी कठिनाई से हुआ। उत्तर प्रदेश में गंगा के खादर में एक व्यक्ति सर्प विष की चिकित्सा बहुत वर्षों से करता है। उसकी वहां दूर-दूर तक प्रसिद्धि है। वह सर्प दंश का सफल चिकित्सक है। औषध का कोई मूल्य नहीं लेता। निःशुल्क और निस्काम सेवा करता है। किन्तु न्यूनता एक ही है वह उस औषधि को किसी को बताता नहीं। हमारे स्वर्गीय ब्रह्मचारी हरिशरण बाईबिलाचार्य जिनकी चर्चा पुस्तक में अन्यत्र कर चुका हूँ, उन्होंने बड़ी युक्ति पूर्वक बहुत परिश्रम से उस व्यक्ति से इस औषध का ज्ञान प्राप्त किया। यह व्यक्ति ब्रह्मचारी हरिशरण जी का मित्र था। बहुत समय तक तो टालता रहा। इस औषध को बताया नहीं छिपाता रहा। वह पिसी पिसाई दवाई रोगियों को देता है। यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि "पिसे हुये औषध और घुटे हुए जोगी का कुछ पता नहीं चलता वह क्या और कैसा है" ब्रह्मचारी जी धुन के धनी थे। अपने उस सर्पविष चिकित्सक के पीछे पड़ गये। समय तो लगा किन्तु उस औषध का ठीक पता निकाल लाये। अपने मित्र को गुरू बनाया। उसे गुरु मानकर पांच ५) रुपये दक्षिणा और पगड़ी आदरार्थ भेंट की और उस औषध का सब रहस्य जानकर मेरे पास पहुँच गये। कुछ दिन तो ब्रह्मचारी जी मेरे से भी छिपाते रहे किन्तु वह मेरा बहुत आदर करते थे। मेरा उनका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतः अन्तोगत्वा वह औषध उन्हें मुझे बतानी ही पड़ी।

अमृता वा नाकुली बूटी

मैं पहले लिख चुका हूं कि यह महाराष्ट्र में वर्षाऋतु में खेतों में खूब प्रचुर मात्रा में होती है। इसके पत्ते हिरणखुरी के समान दो तीन अंगुल लम्बे होते है। इसके पौधे एक डेढ़ हाथ ऊँचे तक बढ़ जाते हैं। जहाँ पत्ता टहनी में फूटता हैं वहीं पत्ते के साथ ही टहनी में से श्वेत रंग के फूल भी निकलते हैं। यह एक प्रकार का क्षुप होता है। प्रति वर्ष वर्षा होने पर फूटता है और चार मास के पीछे पूर्णता को प्राप्त होकर सूख जाता है। किन्तु इसकी जड़ें भूमि में सुरक्षित और जीवित रहती है। हल चलाने से इसके पौधे नष्ट हो जाते हैं। मूल अर्थात् जड़ सहित उखाड़ने से भी ये समाप्त हो जाते हैं। जहाँ ४०-५० वर्ष से हल न चला हो, वहाँ गंगा यमुना आदि नदियों के खादरों में इस बूटी के पौधे ढूंढने से मिल जाते हैं। दो चार स्थानों पर उत्तर भारत में हमें इस बूटी के पौधे मिले हैं। किन्तु महाराष्ट्र या मराठावाला के लातूर, नान्देड़, परली आदि स्थानों में किसानों के खेतों में वर्षा ऋतु में इस बूटी के खूब दर्शन होते हैं। हम भी इस अमृता नाकुली बूटी को वहीं से मंगवाते हैं। यह बूटी सर्प विष पर ही नहीं, सभी प्रकार के स्थावर और जंगम विषों की अचूक औषधि है। सर्पदंश के लिए अमोघ अस्त्र वा रामबाण का कार्य करती है। हजारों रोगियों के प्राण इस बूटी के द्वारा बचाये जा चुके हैं बताने वाले की एक ही शर्त वा प्रतिबन्ध था कि इससे चिकित्सक को धन नहीं कमाना चाहिए। केवल उसकी परोपकार की ही भावना थी। "गुरुकुल झज्जर" जिला रोहतक, हरयाणा और "अर्ष कन्या गुरुकुल नरेला दिल्ली" के औषधालयों से साँप काटे हुए रोगी को सदैव निर्मूल्य (मुफ्त) ही मिलती है। कोई व्यक्ति इसको अपने घर पर रखना चाहे तो लागत मात्र मूल्य ले लेते हैं और औषध दे देते हैं। इस बूटी के चूर्ण में "परवाल पिष्टी" आदि मिलाकर इसका हमने रस बना दिया है जो "सर्प दंश अमृत" नाम से प्रसिद्ध है।

प्रयोग

यह अमृता नाम की बूटी हमें मिल जाती है तो प्राय: हम उखाड़ते नहीं, जड़ भूमि में छोड़ देते हैं और ऊपर से काट लेते हैं। छाया में सुखाकर कूट छान कर बारीक पीस लेते हैं। इसकी मात्रा एक माशे से ६ माशे तक जल, दूध, मधु वा घृत किसी भी एक वस्तु के साथ दे देते हैं। जब सर्प दंश के रोगी को इसकी पहली

मात्रा देते हैं तो यदि रोगी को विष चढ़ा हुआ हो तो यह कड़वी नहीं लगती। रोगी की ठीक पहचान भी हो जाती है कि इसको साँप ने ही काटा है और इसके शरीर में विष का प्रभाव है। जब इसकी दूसरी मात्रा १० वा १५ मिनट के बाद देते हैं तो यह कड़वी लगने लगती है। दूसरी मात्रा के पश्चात हम निश्चिन्त हो जाते हैं और रोगी के प्राण बच जाते हैं। अब तक हमारा यही अनुभवहै कि १०० में से ९९ रोगियों को देने से उनके प्राण बचे हैं अर्थात् सर्प दंश के रोगी भले चंगे हो गए हैं। साधारण विषैले सर्प के काटे हुए रोगी को तो एक ही मात्रा इस औषध की देने से विष तुरन्त नष्ट हो जाता है। अब तक का यही अनुभव है कि रोगी को बहुत विषैले सर्प ने काटा और कटे हुए भी पर्याप्त समय हो गया हो, सारे शरीर में विष फैल गया हो, रोगी बेहोश हो, औषध भी देने से उसके अन्दर न जाती हो इस प्रकार के रोगियों में से कोई कोई रोगी नहीं बचता। ऊपर लिखित प्रकार के रोगी भी बचते देखे गये हैं। जिसके पास यह औषध हो और कैसी भी भयंकर अवस्था का साँप का काटा हुआ रोगी हो औषध उसके अन्दर पहुँचाने का यत्न करना चाहिए निराश व हताश कभी नहीं होना चाहिए। औषध अवश्यमेव देवें सदैव रोगी के बचाने की आशा रखें। परमात्मा की कृपा से यह औषध सर्प-दंश के रोगियों पर जादू जैसा काम करती है। कुछ रोगियों पर इसने कैसा विचित्र प्रभाव किया उसकी कुछ घटनायें पाठकों के लाभार्थ नीचे लिखता हूँ।

प्रथम घटना—बिहार प्रान्त में सिमडेगा नाम का स्थान है। वहाँ पर हमारा एक आर्य समाज का प्रचार केन्द्र है। वहाँ पर आजकल तो हमारा ब्रह्मचारी हरिशरण जी का स्मारक आश्रम के रूप में बना है। ब्रह्मचारी देशपाल जी की देखरेख में सेवा कार्य चलता है। अनेक वर्षों से वहाँ शुद्धि का कार्य भी चलता है। बिहार के आदिवासियों वा वनवासियों में ईसाई पादरियों का जाल बिछा हुआ है। ईसाई प्रचार के निरोध के लिए आर्य समाज यथा शक्ति वन-वासियों में कार्य करता रहा है। राऊरकेला में स्वामी ब्रह्मानन्दजी की संस्थायें हैं। आमसेना उड़ीसा में स्वामी धर्मानन्द जी ने गुरुकुल खोल रखा है। वहाँ के वनवासियों के अनेक छात्र शिक्षित दीक्षित होकर विद्वान् वन चुके हैं। स्वामी भूमानन्द जी ने मध्य प्रदेश में होशगंाबाद का गुरुकुल संभाल रखा है। स्वामी निजानन्द जी सरस्वती दस ग्यारह मास त्रिपुरा में सेवा कार्य करके लौटे हैं। ब्रह्मचारी ऋषिपाल जम्मू के क्षेत्र में कार्य कर रहा है और ब्रह्मचारी सोमदेव जी

भारतवर्ष के अनेक प्रान्तों में संस्कृत भाषा के प्रचार के लिए "संस्कृत शिविर" लगाते रहते हैं। हमारे अनेक ब्रह्मचारी संन्यासी वा वानप्रस्थी घूमकर भी प्रचार करते रहते हैं। उनमें से कुछ प्रचारक व उपदेशक अपने साथ औषध भी रखते हैं। इसी प्रकार के हमारे एक संन्यासी सत्यमुनि जी हैं वे भी सर्प विष आदि तथा अन्य रोगों के औषध अपने थैले में साथ रखते हैं। यह स्वामी जी महाराज सिमडेगा के पास जंगल में से जा रहे थे। इन्होंने अकस्मात् निर्जन जंगल में एक व्यक्ति को बेहोश पड़े हुए देखा। जब ये उसके पास गये तो उसका सारा शरीर नीले रंग का हो गया था। मुख में भी नीले रंग के झाग आये हुए थे। ये भी वहुत वर्षों से सर्प विष की चिकित्सा करते हैं और ये अपने झोले में अमृता व नाकुली वाली औषध शीशी में तैयार रखते हैं। सेवा का अवसर मिल गया। तुरन्त शीशी में एक मात्रा निकाली। देना ही चाहते थे किन्तु एक समस्या आगे आई आसपास कहीं जल भी दिखाई नहीं दिया जिसमें घोलकर इस औषध को दे देते। रोगी बेहोश था। "लाचारी पर्वत से भारी" वाली लोकोक्ति सामने खड़ी हो गई। आर्यसमाजी थे, बुद्धि से काम लिया। झट लघु-शंका की। मूत्र में ही औषध मिलाकर रोगी के मुख में डाल दी। रोगी का थोड़ा सा नाक बन्द किया। तुरन्त ही ईश्वर कृपा से औषध गले के नीचे उतर गई। औषध ने तुरन्त अपना प्रभाव डाला रोगी की मूर्च्छा टूटी और रोगी खड़ा हो गया। उसने उठते ही यह कहा मुझे तो बहुत विषैले सर्प ने डस लिया था और मैं तो एक प्रकार से मर ही चुका था। भगवान् ने मेरे प्राण बचाने के लिए आपको भेज दिया। रोगी बहुत आग्रह करने लगा स्वामी जी आप हमारे घर चलो। मैं भी आपकी कुछ सेवा करूँगा। उस रोगी के बहुत आग्रह करने पर भी स्वामी जी ने घर जाना स्वीकार न किया तथा उसे १ पुड़िया सर्प विष को दूर करने वाली और दे दी कि इसे घर जाकर और ले लेना। रोगी ने कहा मैं इस औषध का जिसने मेरे प्राण बचाये मूल्य देना चाहता हूँ। स्वामी जी कहने लगे इसका मूल्य यही है जहाँ कहीं भी जाओ वहाँ लोगों यही में प्रचार करो कि सिमडेगा में आर्य समाज का एक आश्रम है और वहाँ के साधु सर्प विष की बहुत ही अच्छी औषध बिना कुछ पैसा दिये सेवा के लिए देते हैं। बस यही हमारे आश्रम का प्रचार करो यही इस औषध का मूल्य है।

दूसरी घटना—इसी सिमडेगा के आसपास एक ईसाइयों के बहुत बड़े पादरी को साँप ने काट खाया उसे चिकित्सा के लिए ईसाइयों के अस्पताल में भर्ती कर

दिया। किन्तु वहां औषध उपचार से कोई लाभ नहीं हुआ। वह पादरी मरने ही वाला था कि उसके घर वालों को यह बता दिया कि सिमडेगा में ब्रह्मचारी रहता है वह सर्प विष की औषध बहुत अच्छी जानता है। "मरता क्या न करता" के अनुसार उस पादरी का कोई व्यक्ति ब्रह्मचारी हरिशरण के पास सर्प विष की औषध लेने पहुँच गया। ब्रह्मचारी जी स्वयं सर्प विष की नाकुली वाली औषध लेकर पादरी के पास अस्पताल में ही जा पहुँचे। जाकर उस पादरी को जिसकी सर्प के कारण बहुत बुरी अवस्था थी उसको वह अमृता वा नाकुली औषध दी। एक दो मात्रा के लेने से ईसाइयों के इस बड़े पादरी के प्राण बच गए। इसका उस पादरी ने बहुत अहसान माना और उस अहसान को समय आने पर चुकता कर दिया। एक दिन ईसाइयों का बहुत भारी जलूस सिमडेगा में निकल रहा था। ब्रह्मचारी हरिशरण आदि ने उसके विरोध में विज्ञापन छपवाकर सड़कों पर और दीवारों पर लगवा दिये। उस विज्ञापन पर मोटे अक्षरों में एक बात लिखी थी "विदेशी पादरियो भारत छोड़ो" यह वाक्य सभी ईसाइयों को खटकता था। अतः उसके कुछ व्यक्ति इन विज्ञापनों को उतार उतार कर फाड़-फाड़कर फेंक रहे थे। यह ब्रह्मचारी हरिशरण और उसके साथियों को बहुत बुरा लगा और अब उन ईसाइयों को इश्तिहार फाड़ने से रोकने लगे। वे कब मानने वाले थे। वे तो अपने दलबल के साथ थे और संख्या में ईसाइयों का विशाल जुलूस था। वे इश्तिहार फाड़ते ही रहे और नहीं माने तो ब्रह्मचारी हरिशरण को भी जोश आ गया और कहा हमारे विज्ञापनों को कौन फाड़ता है। एक ईसाई नौजवान आगे बढ़ा और सड़क पर चिपकाये हुये विज्ञापन को फाड़ने लगा। ब्रह्मचारी हरिशरण जी कब चूकने वाला था, वह भी शूरवीर क्षत्रिय था और आर्य समाज की विचार धारा ने सोने पर सुहागे का काम किया था। ब्रह्मचारी जोर से उछला और उछलकर ईसाई नौजवान की छाती पर लात से भयंकर प्रहार किया। फिर क्या था, वह ईसाई नौजवान धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। फिर क्या था ईसाइयों का सारा जुलूस ब्रह्मचारी हरिशरण पर टूट पड़ा उसी समय ब्रह्मचारी हरिशरण पर उसी बड़े पादरी की दृष्टि पड़ी जिसकी चिकित्सा करके ब्रह्मचारी जी ने प्राण बचाये थे। उस पादरी ने बहुत जोर से शोर किया और कहा इस साँपों वाले बाबा जी को कुछ मत कहो और आगे बढ़कर सबको पीछे हटा दिया और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा—

महाराज जी आप जाओ आपको कोई कुछ नहीं कहेगा। इस प्रकार उस सर्प विष की चिकित्सा के फलस्वरूप ब्रह्मचारी हरिशरण को बचा कर उस पादरी ने अपना अहसान चुका दिया।

तीसरी घटना—जिला रोहतक के भालौठ ग्राम में उस समय के आर्यसमाज के सेवक पं० रामचन्द्र पुरोहित को एक विषैले सर्प ने काट लिया। खरखोदे के सर्प विष चिकित्सक ने उसकी चिकित्सा भी की। किन्तु "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की" के अनुसार पं० रामचन्द्र जी की अवस्था बिगड़ी ही गई आठ वा नौ दिन हो गये, उनको नींद तक न आई। जिस पैर पर सांप ने काटा था वह सूज कर थाम जैसा हो गया। भयंकर पीड़ा थी। पैरों को स्पर्श करते ही भयंकर पीड़ा होती थी। फिर सोना, खाना-पीना, चलना कैसे हो सकता था, वे सर्वथा निराश हो चुके थे और मृत्यु की बाट जोह रहे थे। उनकी भयंकर अवस्था देखकर श्री माननीय वैद्य बलवन्तसिंह जी पहलवान प्रधान गुरुकुल झज्जर, दलियाणा निवासी ने एक पत्र लिख कर मेरे पास एक व्यक्ति को देकर भेजा। उसमें यही लिखा था कि पं० रामचन्द्र जी को एक विषैले सर्प ने काट लिया है उनकी अवस्था अच्छी नहीं है। जीवन खतरे में है। आप तुरन्त ही सर्प विष की औषध लेकर पहुँच जायें। मैं सारे आवश्यक कार्य छोड़कर औषध ले अपनी जीप द्वारा भालोठ पं० रामचन्द्र जी के पास पहुँच गया। जाते ही मुझे उनकी अवस्था देखकर बड़ा दुःख और चिन्ता हुई। सर्पविष के वेगों में पंडित जी बुरी तरह फंसे हुये थे। पहले तो मैंने उनको धैर्य दिया। इस अचूक औषध की एक मात्रा पं० रामचन्द्र जी को खिलाई औषध कड़वी नहीं लगी थोड़ी देर बाद दूसरी मात्रा दी, वह कड़वी लगी। मैंने पंडित जी को कहा ईश्वर की कृपा से प्राण बच गये हैं अब आप कोई चिन्ता न करें। उनको आठ नौ दिन से नींद नहीं आई थी सर्पदंशित पैर में भयंकर पीड़ा थी। मैंने उसी समय जंगल से शुद्ध मिट्टी मंगवायी और उसे पानी में घोल दिया और पैर के ऊपर गीली मिट्टी का गाढ़ा लेप कर दिया। एक खुले मुंह के कनस्तर को जो मिट्टी मिले पानी से भरा हुआ था। उसमें उनका वह पैर रखवा दिया। थोड़ी देर में उनको अपूर्व शान्ति मिली, कष्ट व विपदा सब दूर हो गई बैठे ही बैठे नींद आने लगी। मैंने उस समय तक जंगल में से शिरीष के पत्ते, जंगली गोभी, कैन्दु, नीम आदि के हरे पत्तों को मंगवाकर उन्हें पीसकर लेप तैयार करवा लिया। मिट्टी की चिकित्सा से उनको बड़ी शान्ति मिली थी। कष्ट

नाम मात्र का रह गया था। सूजन भी कुछ ढीला हो गया था। पैर को शुद्ध ठण्डे जल से घुलवाकर ऊपर लिखे पत्तों आदि का गाढ़ा लेप पंडित जी के पैर पर करवा दिया। पंडित जी का कष्ट दूर हो गया और उनको नींद आने लगी। मैं उन्हें सुलाकर और यह कहकर कि प्रातः काल आऊँगा अपने ठहरने के स्थान पर चला गया। प्रातः काल फिर जाकर संभाला पण्डित जी सारी रात सोये ज्वर भी उतर गया था। पीड़ा वा कष्ट नाममात्र को भी नहीं रहा था। पण्डित जी भले चंगे थे। रोना हंसने में बदल गया था। उनको कुछ दिन की औषध खाने के लिये देकर चला आया और यह कह आया कि दो चार मास घृत का खूब सेवन करें क्योंकि सारे शरीर में विष फैल गया था। इसलिये औषध देना और घी खिलाना बहुत आवश्यक था।

चौथी घटना—गुरुकुल झज्जर के निकट ही एक ग्राम सिलानी है। उस गांव के सर्पदंश रोगियों की चिकित्सा हमने की है। एक दिन उसी ग्राम का सांप का काटा हुआ रोगी रात्रि को तांगे में बैठकर अपने परिवार के सदस्यों के साथ आया उस समय मैं गुरुकुल में ही था। मैंने रोगी को देखा। रोगी कष्ट के मारे चिल्ला रहा था और अत्यन्त व्याकुल था। उसकी माता जी बहुत दुःखी थी। मैंने रोगी को देख कर कहा सांप को काटे हुये बहुत देर हो गयी, गांव तो बिल्कुल नजदीक है आप इतनी देर से क्यों आये। देरी का कारण पता चला जिस तांगे में उस रोगी को लाये थे, वह तांगे वाला किराया ढाई रुपये मांगता था। रोगी की माता २ रुपये किराया देनी चाहती थी इस आठ आने के लोभ में खींचातानी होती रही। तांगे वाला ढाई मांगता रहा रोगी की माता जी दो रुपये पर अड़ गई, इसी कारण रोगी की जान खतरे में पड़ गई उसी समय मैंने यथोचित चिकित्सा की। एक पुड़िया अर्थात् पहली मात्रा घी के साथ रोगी को दे दी। जहां सांप ने काटा था दंश स्थान पर पछने लगा कर विषैला खून निकाल दिया और एक औषध बांध दी। पहली मात्रा जो रोगी को दी थी, वह कड़वी नहीं लगी मैंने उसी समय कह दिया विष सारे शरीर में फैला हुआ है रोगी को लाने में बहुत देरी कर दी। औषध की दूसरी मात्रा भी १०-१५ मिनट के पश्चात् दे दी। रोगी को औषध कड़वी लगी, पीड़ा और कष्ट भी कम हो गया। एक पुड़िया घर जाकर खाने के लिये और दे दी और ढाढस बंधाया कि अब तुम बच गये, घबराने की कोई जरूरत नहीं। कल रोगी के लिये इसकी अवस्था बता कर और औषध ले जाना। रोगी

को लाने की आवश्यकता नहीं। रोगी की माता जी तब साथ थी। वह बहुत आग्रह पूर्वक कहने लगी औषध कामूल्य ले लो। मैंने उसे समझाया यहां कोई रोगी आ जाये तो सर्पविष की औषध का मूल्य नहीं लेते। वह महिला हठ वा आग्रह करने लगी औषध का मूल्य तो लेना ही पड़ेगा। वह बार-बार समझाने पर भी जिद्द करती ही रही। मैंने उसे कहा कई दिन तक इसे औषध देनी पड़ेगी इसे अच्छा हो जाने दो। आप नहीं मानती तो हम औषध का मूल्य तो लेंगे नहीं। आप जो अपनी इच्छा-वा प्रसन्नता से गुरुकुल को दान देना चाहते हैं वह दे देना। कुछ दिन की चिकित्सा से रोगी भला चंगा हो गया। वह माता जी फिर आई और कहने लगी अपने पुत्र के अच्छा होने की खुशी में दान देना चाहती हूँ। मैंने उसे गुरुकुल के कार्यालय में भेज दिया। वहां वह आठ आने दान देकर चली गई। हमारे कार्यालय वालों ने रसीद देकर धन्यवाद कर दिया।

इस प्रकार की सेवा का अवसर प्रायः मिलता ही रहता है। इस अमृता बूटी को खिला भी देते हैं और काटे हुये स्थान पर लगा भी देते हैं दोनों ही प्रकार से उपयोगी है। सभी प्रकार के सर्पों के काटने पर मैंने इसका प्रयोग किया है। चाहे दर्वीकर फणियर सांप ने काटा हो, चाहे मण्डली अथवा राजिमान् ने काटा हो, कहीं भी इस औषध का प्रयोग विफल नहीं होता। यह अमृता वा नाकुली जिसे महाराष्ट्र के भाई नाय भी कहते हैं यह "दिव्य औषध" है। इसे अकेले ही छान-कर पानी, घृत, दूध और शहद किसी भी पदार्थ के साथ सेवन कराया जा सकता है। समय पर कोई अनुपान मिल जाये, किन्तु यह औषध अन्दर जानी चाहिये। विचित्र जादू के समान अपना तुरन्त प्रभाव दिखाती है। अमोघ अचूक और अद्वितीय औषध है। ऐसी औषधियों को ही रामबाण कहते हैं। किसी की मृत्यु ही आ गई हो तो विवशता है। इस औषध में कोई न्यूनता नहीं, औषध औषध तो क्या अपूर्व औषध है। जिस व्यक्ति विशेष से हमें इसकी प्राप्ति हुई है वह इसका अकेली प्रयोग का नहीं करता। वह तीन बूटियां और इनके साथ मिलाता है। उसका योग निम्नलिखित है।

योग

(१) अमृता नाकुली १ तोला (२) पत्थर फोड़ी १ तोला (३) कण्टकारी छोटी के बीज १ तोला, अपामार्ग लघु (विषखपरा) की जड़ १ तोला। इन सबको छाया

में सुखाकर १-१ तोला लें। यह एक तोला सूखी हुई का भार है, इसको कपड़ छान कर लें, और इसे शीशी में सुरक्षित रखें। इसकी मात्रा एक समय में एक माशे से तीन माशे तक है। किसी विशेष अवस्था में ६ माशे तक भी मात्रा दी जा सकती है। इससे हानि होने की कोई संभावना नहीं है। सबसे अच्छा अनुपान गोघृत है। यदि कहीं से चरक शास्त्र का अमृतघृत मिल जाये तो सोने में सुहागा है। वैसे जल, गाय, वा बकरी का दूध आदि चाहे किसी भी अनुपान के साथ इसे दे सकते हैं। यह अन्दर पहुँचते ही अपना दिव्य प्रभाव दिखाती है। ऊपर अमृता के विषय में हम पहले लिख चुके हैं।

पत्थर फोड़ी—भूमि पर फैली हुई एक बूटी होती है, जिसके पत्ते चने के समान छोटे-छोटे होते हैं। फूल लाल-लाल होते हैं। उत्तर भारत में प्रायः सर्वत्र मिलती है। किसी भी अच्छे वैद्य से पूछकर जानकारी कर लें। "कण्टकारी" छोटी जो कांटों वाली होती हैं जिसके गोल गोल फल लगते हैं, पकने पर पीले हो जाते हैं। इसी के बीज लेने चाहिएं। इसे ग्रामीण लोग पसरकटाई वा कण्डाई भी कहते हैं। यह दशमूल में डाली जाती है। खांसी वा दमे के रोग में भी काम आती है।

अपामार्ग लघु—अपामार्ग लघु को बहुत थोड़े लोग जानते हैं। इसके पौधे करील वृक्षों के नीचे अथवा पलाश (ढ़ाक) की बनी में मिलते हैं। इसकी जड़ें बहुत पतली सूत-सी और बहुत संख्या में होती हैं और एक बालिश्त लम्बी होती हैं। पत्ते कुछ-कुछ कुक्कर भंगरे (कँकरौंदा) (गंधीली) के समान होते हैं। इसे कुछ पुराने होने पर आपामार्ग के समान बीज से लगते हैं। किसी जानने वाले वैद्य से पूछ लेना चाहिए। ये वस्तुयें न मिलें तो कोई चिन्ता वाली बात नहीं। अकेली अमृता वा नाकुली सर्प विष को दूर करने के लिए बहुत अच्छी औषध है। केवल इस अकेली को कूट-छानकर प्रयोग करें। इसकी मात्रा भी १ माशे से तीन माशे तक, अधिक से अधिक ६ माशे तक होती है। हम इसका रस निम्न प्रकार से बनाते हैं।

सर्पदंश अमृत—नाकुली व अमृता १ छटांक, प्रवालपिष्टि एक तोला, इन दोनों को खूब बारीक रगड़कर छान लेते हैं। इसमें ६ माशे शुद्ध पारा गन्धक की कजली डाल देते हैं। अथवा इसके स्थान पर ३ माशे शुद्ध सिगरफ और शुद्ध गन्धक तीन माशे खूब बारीक रगड़कर सब औषधियों को मिला सुरमा जैसा बारीक कर

लेते हैं और इसकी मात्रा १ माशे अधिक से अधिक २ माशे तक जल वा घी आदि के साथ दे देनी चाहिये। बनाते समय यह ध्यान रखें या तो पारा गन्धक की कजली डालें या शुद्ध सिंगरफ और शुद्ध गन्धक को बारीक पीसकर डालें। दोंनो में से एक डालें, दोनों न डालें। प्रवालपिष्टि के स्थान पर "मुक्ता शुक्ति की भस्म" भी डाल सकते हैं। अथवा प्रवालपिष्टि ३ माशे और मुक्ता शुक्ति की भस्म ६ माशे भी डाली जा सकती है। प्रवाल मुक्ता शुक्ति के स्थान पर ३ माशे मोती वा मुक्ता की पिष्टि या भस्म भी डाली जा सकती है। यह ओषध इसके डालने से और बढ़िया बन जाती है। मैंने कुछ रोगियों के उदाहरण दे दिये हैं। ऐसे सैंकड़ों सच्चे उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनकी हम समय समय पर चिकित्सा करते रहें हैं। अनेक योग और औषध सर्पविष को दूर करने की पीछे लिखी जा चुकी हैं। हमने भी बहुत औषधों का प्रयोग करके बहुत सर्प रोगियों की सेवा की है। इनमें से सर्वोत्तम औषध अमृता है। दूसरी औषध अमृतघृत है। "वैसे विषघ्नं घृतं" सब विषों की औषध घृत है। घृतों में भी उत्तम गोघृत है। गोघृतों से भी उत्तम अमृतघृत है। तीसरी औषध 'शिरीष आसव वा अरिष्ट' जिसका योग पीछे दिया जा चुका है। शिरीष के अनेक योग भी हमने पीछे दिए हैं। शिरीष का पचांग भी विष दूर करने में अच्छी औषध है। सूजन उतारने के लिए शुद्ध मिट्टी की ठण्डी पट्टियां बहुत अच्छा काम देती हैं। ये कष्ट और पीड़ा को भी हरती हैं। मिट्टी में सब प्रकार के विषों की अपहरण की शक्ति है। सर्प के रोगी को मिट्टी में दबाने से बहुत लाभ होता है। किसी बड़े बर्तन में मिट्टी घोलकर गाढ़ी कर लें; दंश स्थान को उसमें रखने से बहुत लाभ होता है। एक-दो घण्टे में बहुत लाभ होता है। मिट्टी बदलते रहें, मिट्टी में विष के हरने, पीड़ा को दूर करने, और सूजन को दूर भगाने की अपूर्व शक्ति है। कई बार जब लोग सर्पदंश के रोगी को यह समझते है कि वह मर गया तो वह मिट्टी में दबाने से पुनर्जीवित हो जाता है। इस प्रकार की अनेक घटनायें देखने सुनने में आती हैं। एक सच्ची घटना नीचे दी जाती है—

गुरुकुल होशंगाबाद मध्य प्रदेश के पास एक कन्या को सर्प ने काट लिया और लोगों की दृष्टि में उसकी मृत्यु हो गई। उसके सम्बन्धियों ने उसको पूर्णतया मृत समझकर वहीं गुरुकुल के पास एक खेत में गढ़ा खोदकर मिट्टी में दबा दिया वहाँ दो तीन दिन के पश्चात् विद्यार्थियों में यह चर्चा होने लगी कि यह लड़की सांप के काटने से मरी है इसलिए भूत व प्रेत बनकर लोगों को तंग किया करेगी।

एक सच्चा आर्य विद्यार्थी था। वह कहने लगा इस भूत को मैं अभी देखता हूं मैं इसकी मुर्दा लाश को निकालकर अभी फेंक देता हूँ, देखूं मेरा क्या बिगाड़ती है यह कहकर वह विद्यार्थी कस्सी वा कुदाला लेकर उसी स्थान पर पहुंच गया जहां लड़की का शव गड़ा हुआ था। उसने उस सारी मिट्टी को जो शव के ऊपर थी, खोदकर उतार कर फेंक दी। जब सर्पदंशित उस लड़की का शरीर मिट्टी से रहित हो गया तो एक अत्यन्त आश्चर्य की बात देखने को मिली वह लड़की जिसका शरीर मुर्दा समझकर गाढ़ दिया गया था, वह सर्वथा जीवित निकल आई और खड़ी हो गई जिस मिट्टी से वह दबाई गई थी उस मिट्टी ने उसके शरीर में जो विष था वह सारा खींच लिया और शरीर विष रहित होकर जिसे मुर्दा समझा गया था पूर्णतया स्वस्थ होकर जीवित रूप में प्रकट हो गया। वह अब भी जीवित है।

गोत्र हत्यारे दुर्योधन ने महा पराक्रमी भीम को विष देकर गंगा में बहा दिया था। उसके विषय में प्रसिद्ध है, वह भी जीवित होकर अपने घर लौट आया था। जल, मिट्टी, गाय का गोबर और गाय के घी दूध में सब प्रकार के विष दूर करने की अपूर्व शक्ति है। गोघृत पुराना होने पर अनेक प्रकार के रोगों को दूर करने की अपूर्व शक्ति प्राप्त कर लेता है। आयुर्वेद शास्त्रों में लिखा है कि १०० वर्ष पुराने गो घृत का नाम भी अमृत घृत होता है। प्राचीन काल में हमारे घरों में पुराना घी रखा जाता था। राजस्थान में अब भी १०० अथवा १५० वर्ष पुराना घृत मिला करता है जो सुंघाने और लगाने से अनेक प्रकार की मृगी, पागलपन आदि रोगों को दूर करता है। १० वर्ष पुराना गो घृत आंखों में अञ्जन के समान लगाने से जाला मोतिया आदि को दूर करता है। इसी विषय में विस्तार से इसे दूसरी पुस्तक में पाठकों के लाभार्थ लिखूंगा यहां तो केवल संकेत मात्र कर दिया है। सर्पदंश में गोघृत वा चरक शास्त्र का अमृतघृत प्रयोग करना चाहिए। यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है समय पड़ने पर इन्हें आजमा कर देखें और लाभ उठायें।

सांप और मनुष्य

प्रत्येक मनुष्य सांप को अपना सबसे बड़ा शत्रु समझता है। जहां और जब किसी भी मनुष्य को सर्प दिखयी देता है वह तुरन्त ही उसका नाम वा निशान

मिटाने पर उतारू हो जाता है। इस प्रकार प्रतिवर्ष मनुष्यों के द्वारा लाखों सांप बिना किसी अपराध के मारे जाते हैं। यों हि सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाला प्राणी मानव लाखों निरपराध प्राणियों की हत्या करता है। यह आव देखता, न ताव देखता है जहाँ किसी सर्प पर दृष्टि पड़ी और उसी समय यह सर्प के शिर पर प्रहार करके उसके प्राण ले लेता है। इसका बदला विषैले सर्प मनुष्य को काटकर और मौत के मुंह में पहुंचा कर लेते रहते हैं। भारतवर्ष में ही २० लाख से अधिक मनुष्य प्रतिवर्ष सांप के काटने से मरते हैं। सारे संसार में तो न जाने कितने मनुष्य साप के काटने से मरते हैं। इन सबकी गणना करना भी बहुत कठिन कार्य है। जैसे को तैसा मिल ही जाता है। मनुष्य सांप को निर्दयता से मारता है, परिणामस्वरूप वह भी सर्प दंश का शिकार सब प्राणियों से अधिक बनता है।

सांप को क्यों मारते हैं ?

सांप के मारने का मुख्य कारण भय और लोभ है। प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक सांप को विषैला समझकर डरता है कि कहीं यह मुझे काट खाये और परिणाम स्वरूप मेरी मृत्यु न आ जाये। इस शंका वा मृत्यु के भय से प्रायः सांप को देखते ही उसे मारने का निश्चय कर बैठता है और मारने का यत्न भी करता है। मृत्यु का भय वा जीने का लोभ ही मनुष्य को सांप को मारने के लिये विवश करता है। एक कारण तो सांप का भय ही है। वह काटे वा न काटे किन्तु काटने की संभावना से मनुष्य सर्प का प्राण घातक शत्रु बना हुआ है। सांप कौन सा विषैला है और कौन सा निर्विष है, यह ९९ प्रतिशत मनुष्य जानते ही नहीं। प्रत्येक सर्प को विषैला समझ कर अन्धाधुंध मारने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार घोर अत्याचार मानव जाति अन्य प्राणियों पर करती रहती है। दोमुंही सांप जो सर्वथा विषहीन होता है, और यह साधारण मनुष्य क्या, प्रायः छोटे बालक भी जानते हैं। इतने पर भी सर्वथा विषहीन दोमुंही सर्प को भी लोग व्यर्थ में ही मार डालते हैं।

द्वितीय कारण

सांप के मारने का द्वितीय कारण मनुष्य लोभ है। सांप की चमड़ी और चमड़ी से बनी हुई वस्तुओं का व्यापार करते हैं। वैसे सांपों की चमड़ी के निर्यात (बाहर भेजने) पर हमारी सरकार ने प्रतिबन्ध लगाया हुआ है, फिर भी विश्वस्त वा अधिकृत

सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि केवल कलकत्ता से व्यापारियों ने ही जुलाई १९७७ और १९७८ के बीच एक करोड़ बीस लाख रुपये मूल्य की सांप की चमड़ी का निर्यात किया है अर्थात् बाहर भेजा है। इस लोभ के कारण असंख्य सांप मारे गये।

यह प्रतिबन्ध सरकार ने १९७६ के मध्य में लगाया था और इसके अन्तर्गत सांपों तथा उनके चमड़ी से बनी चीजों का निर्यात सामान्यतः बन्द है, प्रतिबन्धित है। सिर्फ वैज्ञानिक शोध आदि के लिये विशेष निर्यात लाईसेन्स दिये जाते है।

वन्य जीवन विशेषज्ञों का मत है कि सरकार ने कानून में "ओल्ड स्टाक क्लियरेंस" की छूट देकर इस प्रतिबन्ध को कानूनी तौर पर निर्बल बना दिया है।

इस छूट का सहारा लेकर सन् १९७६-७७ में देश से ३०७५६६५ साँपों की चमड़ियों का निर्यात किया गया। जिसमें व्यापारियों ने ३६४७५८५६ रुपये कमाये। सन् १९७७-७८ में निर्यात की गई चमड़ियों की घोषणा अभी नहीं हुई है। एक ही वर्ष में ३० लाख ७५ हजार सांप केवल इनके चमड़े के व्यापार के लिये मारे गये।

सांप की चमड़ियाँ विदेशों में जाती हैं। इंग्लैंड अमरीका जापान तथा इटली के नाम प्रमुख हैं जो सांप की चमड़ियाँ भारत से खरीदते हैं। सन् १९७६-७७ में भारत से सबसे अधिक सांप की चमड़ी खरीदने वाला देश इंग्लैंड था। जिसने ९६९९४५ सांपों की चमड़ियाँ खरीदीं अर्थात् भारत के लगभग १० लाख सांप चमड़े के लिये इंग्लैंड के लिये ही मारे गये।

यह हिसाब तो कानून के अनुसार चमड़े के लिये मारे गये सांपों का है किन्तु जो कानून के विरुद्ध साँपों की चमड़ी का निर्यात विदेशों को होता है वह कानूनी निर्यात से चार गुना अधिक है। यह निर्यात साँप की चमड़ी और चमड़ी से बनी वस्तुओं के रूप में होता है। गैर कानूनी चमड़े के लिये जो सांप मारे गये वे एक वर्ष में चर्तुगुणे हैं अर्थात् १२३०६६० सांप चमड़े के लिये भारत में मारे गये। भय के कारण जो सांप मनुष्य मारते हैं उनसे बहुत ही अधिक चमड़े के व्यापार और लाभ के लिये मारे जाते हैं।

सांप का भय

मनुष्य के मन में सर्व प्रकार के सांपों के प्रति जो भय और धारणा है, यह यथोचित ज्ञान से दूर हो सकती है। सब सांप विषैले नहीं होते। कौन विषैला है

और कौन सर्प निर्विष है, इसे जाने बिना सांप को देखते ही मार देना एक अमानवीय कार्य है, घोर पाप वा अधर्म है। यदि लोगों को यह उचित ज्ञान हो जाये तो वे उन्हीं सांपों को मारेंगे जो विषैले वा घातक होंगे। और सांपों को भी तभी मारेंगे जब उनसे कोई भय (खतरा) उत्पन्न हो जाय। यह जानकारी भी बहुत ही कम लोगों को है कि सांप तभी आक्रमण करता वा काटता है जब उसे छेड़ा जाता है।

एक विशेष बात यह भी है कि भारत देश में सर्प दंश से मरने वालों में बहुत बड़ा भाग उन लोगों का है जिनकी हृदय गति इस भय से रुक जाती है कि सांप ने उन्हें काट लिया है और फिर उनकी मृत्यु निश्चित रूप से आ आती है। यदि सांपों के विषय में लोगों का यथोचित ज्ञान हो तो बहुतों के प्राण बच सकते हैं। हमारे देश में अन्धविश्वास बहुत अधिक है लाखों लोग सांप के काट लेने पर झाड़ फूक करवाते हैं, झाड़ा लगवाते हैं जो किसी काम का नहीं, कोरा पाखण्ड हैं, ठगी है। यदि सर्प विषैला है तो झाड़ फूंक में समय खोना मृत्यु को बुलाना है। जो समय झाड़े आदि पाखण्ड में खोया जाता हैं, उसी समय में किसी अच्छे चिकित्सक से चिकित्सा कराई जाय तो व्यक्ति को बचाया जा सकता है।

सांप मनुष्य के मित्र

जो यह पढ़ेगा कि सांप मनुष्य के मित्र हैं तो वह बड़े आश्चर्य में पड़ जायेगा। वह चौंक उठेगा कि क्या कहीं सांप भी मनुष्य का मित्र हो सकता है? हाँ सांप कई प्रकार से मनुष्य का मित्र है। जैसे सांप के विष, हड्डी और चर्बी से हैजे विषूचिका, कण्ठमाला (बेल) और जहरीले फोड़ों की बहुत अच्छी औषध बनती है।

सांप का आहार

विभिन्न प्रकार के सांपों को देखने से सांपों के विषय में जो ज्ञान प्राप्त हुआ वह आश्चर्य चकित करने वाला है। अधिकांश सर्पों का मुख्याहार (भोजन) चूहा (मूषक, मूसा) है। सांप चूहों को खाकर मनुष्य की बड़ी भारी सहायता करता है। उदाहरणार्थ हमारे देश में चूहे प्रतिवर्ष १६ प्रतिशत खड़ी फसलों का विनाश कर डालते हैं और १० प्रतिशत अन्न भण्डार में रखे अन्न को खा जाते है। यदि यह अन्न पूरा का पूरा बचा लिया जाय तो दस करोड़ व्यक्तियों के भोजन के

लिये पर्याप्त है।

ये सांप इन्हीं चूहों और इनके बच्चों को खाकर अपना पेट पालते हैं और हमारे बिना जाने मानवता की बहुत बड़ी सेवा करते हैं। इसका अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं। लोग यह तर्क भी करते हैं कि चूहे तो दवाओं से भी मारे जा सकते हैं किन्तु आप चूहों को औषध खाने के लिये कैसे विवश कर सकते हैं। दवाओं और उनके छिड़कावों पर जो धन व्यय होता है वह पृथक् है। दूसरे सांप चूहों को ढूंढ़-ढूंढ़ कर मारते हैं। चूहों को ढूंढ़-ढूंढ़ कर मारना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। जहाँ चूहा अन्न की हानि करता है वहाँ बहुमूल्य वस्त्रों और पुस्तकों को काट कर ढेर कर डालता है। पुस्तकालयों, पुस्तक भण्डारों आदि स्थानों पर भी जहाँ पुस्तकें रहती हैं, चूहे लाखों रुपये की पुस्तकें काट-काट कर सर्वथा विनाश कर डालते हैं। पूरी सावधानी बरतने पर भी हजारों रुपये की पुस्तकें तो हमारे पुस्तकालयों की काट डालीं। घरों में अन्न, वस्त्र, पुस्तक आदि का नाश चूहों द्वारा होता है, उसका बिल्ली पाल कर भी बचाव किया जा सकता है। किन्तु वास्तव में जो अन्न और कृषि का नाश चूहे करते हैं उसे हम चूहों से नहीं बचा सकते। वहां तो सांप और नेवले ही चूहों को मार कर खेती और अन्न की रक्षा करते हैं। अतः किसान और राष्ट्र के अथवा पशुओं के सच्चे मित्र सांप आदि भी सिद्ध होते हैं। हम पहले लिख चुके हैं कि जो चूहों को मारकर सांप कृषि की रक्षा करते हैं उस अन्न से १० करोड़ से भी अधिक व्यक्तियों को भोजन मिलता है। यह ठीक है कि सांप के काटने से मरने वालों की संख्या कोई सहस्रों में गिनता है, कोई लाखों की गिनती करता है। सांप किसी शौक या रुचि में मनुष्य वा अन्य प्राणियों को नहीं काटता, छेड़ने पर ही सांप मनुष्यों को डसते हैं। बिना छेड़े वा निष्कारण ही किसी को नहीं काटता है। कभी अज्ञानवश वह पैरों के नीचे आ जाता है दबने पर या छेड़ने पर अपनी प्राणों की रक्षा के लिये ही काटता है। हम पहले लिख चुके हैं कि सब सांप विषैले भी नहीं होते। विष रहित सांप को मारना अपने सच्चे मित्र को ही मारना है और सभी सांप चाहे वो विषैले हों अथवा निर्विष हों उनका प्रिय भोजन चूहा है। चूहे का सबसे बड़ा शत्रु सांप है। शत्रु का शत्रु सदा अपना मित्र होता है। अतः सांप को मारना अपने मित्र को मारना है। इसलिये निष्कारण बिना सोचे समझे हमें सर्पों को नहीं मारना चाहिये। इसी में मानव जाति व अन्य प्राणियों तथा

राष्ट्र का हित है। मनुष्यों को सांपों से सावधान तो रहना ही चाहिये। विषैले सर्पों से सदा बचकर रहें इसी में कल्याण है। जंगल में ढूंढ़-ढूंढ़ कर उसको मारना कौन सी मानवता है। यह मनुष्योचित कार्य नहीं है। उलटा पाप वा अधर्म ही है। अतः व्यर्थ में ही सांपों को नहीं मारना चाहिये। यही पाठकों से निवेदन है। आशा है मेरे इस निवेदन पर ध्यान देंगे और मानव कल्याण के लिये अपने मित्र सांपों को नहीं मारेंगे।

एक बहुत आवश्यक सावधानी

हमने इस पुस्तक में जहां चरक सुश्रुत में लिखित अनेक शास्त्रोक्त विषनाशक योग दिये हैं, वहां अपने तथा अनेक वैद्यों के अनुभूत योग भी दिये हैं। अब आवश्यकता पड़ने पर इनसे यथोचित उपयोग लेने और लाभ उठाने की बात है। क्योंकि—

औषधं तद्धा उपयुक्तमारोग्याय यत्कल्पते।
भिषजां स वै श्रेष्ठोऽस्ति यो रोगेभ्यो विमोचयेत्॥

औषध वही श्रेष्ठ वा उपयोगी है जो आरोग्य वा स्वास्थ्य प्रदान करती है और चिकित्सक वही श्रेष्ठ है जो रोगी को रोगों से विमुक्त कर दे। विष चिकित्सा में तो यह बहुत आवश्यक है कि तुरन्त चिकित्सा कर के रोगी के प्राण बचाने चाहियें। चरक शास्त्र की सम्मति है कि पहले वेग में वमन कराना तथा दूसरे वेग में विरेचन (जुलाब) देना चाहिये। सुश्रुतकार का मत है कि दोनों वेगों में वमन करा कर विष को बाहर निकाल देना चाहिये। क्योंकि विष पहले आमाशय में ही रहता है, अतः वमन से बाहर निकल जाता है। यदि वैद्य उचित समझे तो पहले वा दूसरे वेग में जुलाब देकर विष को निकाल देना चाहिये, विष शरीर में नहीं रहना चाहिये। चरक शास्त्र में एक बहुत लाभ की बात लिखी है—

पीतं वमनैः सद्यो हरेद् विरेकैर्द्वितीये तथा।
आदौ हृदयं रक्षेत् तस्यावरणं पिबेद् यथालाभम्॥
—चरक चिकि० २३, ४५-४६॥

पीया हुआ वा आमाशयगत विष वमन के द्वारा तत्काल ही निकल जाता है, अतः आरम्भ में वमन कराने वाली औषध से वमन (कै) करा देवे। विष के दूसरे वेग में वा दौर में जुलाब देकर विष को निकाल देवें, किन्तु विष के रोगी के हृदय की विष से रक्षा करनी चाहिये। यदि विष प्रभाव से हृदय की रक्षा न की गई तो सब करा-कराया परिश्रम वृथा मिट्टी में मिल जायेगा। अतः हृदय रक्षार्थ रोगी को घी, दूध, तथा गोबर एवं गन्ने का रस आदि पिलाना चाहिये। यदि सर्प दंशित व्यक्ति को खिलाने के लिये घी आदि न मिले तो मिट्टी ही खिला देवें।

इसका सारांश यह है कि विष इन खाये हुये पदार्थों में लिपट जायेगा और हृदय पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा। यदि रोगी को घी आदि पदार्थ न खिलाया जाये तो विष का सीधा आक्रमण हृदय पर होता रहेगा यही कारण है कि ग्रामों में विष के रोगी को सर्वप्रथम घी पिला ही देते हैं। चतुर वैद्य भी ऐसा ही करते हैं। घी पीने से हृदय की रक्षा होती है और स्थावर, जंगम विष भी वमन, विरेचन के द्वारा बाहर आ जाता है। पुनः तीसरे, चौथे और शेष वेगों में पूर्वोक्त औषध देनी चाहिये। "विषघ्नं घृतम्" घृत सभी अवस्थाओं में विष को दूर करने में अमृत का कार्य करता है।

॥ समाप्त ॥

आर्य आयुर्वैदिक रसायनशाला

गुरुकुल झज्जर की

पेटेंट औषधियां

सर्पविषामृत रस

इस कि एक मात्रा
देने के पश्चात् मृत्यु का
डर नही रहता।

हमारे प्रमुख प्रकाशन

व्याकरणमहाभाष्यम्	
प्रदीप-उद्योत-विमर्श सहित	३५०·००
काशिका	४०·००
अष्टाध्यायी (मूल)	१·७५
सामवेद (मूल)	१५·००
उपनिषत्समुच्चयः	१०·००
योगरीति	३·००
सन्ध्या अष्टांगयोग	५·००
धर्मनिर्णय (१-४ भाग)	२८.००
निरुक्त हिन्दीभाष्य भाग दो	६०·००
योगार्यभाष्य	६·००
सांख्यार्य भाष्य	२०·००
वैशेषिकार्य भाष्य	५०·००
न्यायार्य भाष्य	६०·००
वेदान्तार्य भाष्य	८०.००
मीमांसार्य भाष्य १-३ भाग	१३०·००
कुलियात आर्य मुसाफिर (१-२ भाग)	६०·००
आदर्श ब्रह्मचारी	०·८०
गीता विवेक	८·००
स्वस्थवृत्तम्	१·००
महापुरुषों के संग में	२·५०
ओ३म् गीताञ्जलि	२·५०
छन्दःशस्त्रम्	४·००
काव्यालंकारसूत्राणि	२·००
कारिकाप्रकाश	२·००
दयानन्दलहरी	१·२५
विरजानन्दचरितम्	१·५०
नारायणस्वामिचरितम्	·७६
ब्रह्मचर्यशतकम्	·६५
गुरुकुलशतकम्	·५०
चारुचरितामृतम्	
भारतेतिहासः	
तत्वबोध	१·
लिंगानुशासनवृत्तिः	१·२५
स्थावरजीवमीमांसा	२·००
महर्षि दयानन्द जीवन कथा (भजन)	·७५
असली अमृतगीता १-२ भाग	·७५
बस्तीराम रहस्य	·५०
मानस दीपिका	१·५०
पोप की नाखर	·३०
पाखण्ड खंडनी	२·००
बस्तीराम अग्निबाण	१·००
गोरक्षा तथा सिखगुरु	·८०
सिख और यज्ञोपवीत	·७५
मांस मदिरा निषेध	·७१
दो महात्मा (ईसा दयानन्द)	१·००
सामयिक समाधान	·५०
मनोविज्ञान शिवसंकल्प	६·००
वेद प्रवेश (१-२ खण्ड)	१·५०
फिट्सूत्रप्रदीप	१·००
महर्षि दयानन्द जीवन	२·२५
वेद विमर्श (प्रथम भाग)	२·००
सुखी जीवन	४·००
घर का वैद्य (तीनों भाग)	१०.००
रामप्रसाद बिस्मिल	१·५०
ईशोपनिषद् व्याख्या	·७५
संस्कृत प्रबोध	२·००
दैनन्दिनी	२·५०
जीव का परिमाण	.७५
कन्या और ब्रह्मचर्य	·८०

प्रकाशक

हरयाणा साहित्य संस्थान, पो० गुरुकुलझज्जर, रोहतक

हमसे जुडे लिंक

+917433906871

हमसे जुडे लिंक

सब PDF पुस्तक 01

सब PDF पुस्तक 02

Zevyoq **+917433906871**